"है . ...क्या ? .....अच्छा अच्छा... . मैं अवश्य ही जलसे मे शामिल होने का प्रयास करूँगा, क्या करूँ अवकाश नही मिलता हिंहिं... . हिंहि.. ..(हँसते हैं) "अच्छा नमस्कार है।"

(टेलीफोन का चोंगा रख देते हैं ।)

(नौकर से) तुम्हे तो कहा था, इधर मत आना।

रामलखन—आप ई तो कहे रहे कि कऊ आए तो इत्तला कर दे ई मुदा अब ई जमादारिन अपनी मजूरी मांगत......

मि० सेठ—(गुस्से से) कह दो उस से, अगले महीने आये। मेरे पास समय नहीं। चले जाओ। किसी को मत आने दो।

भगिन—(दरवाजे के बाहर से विनीत स्वर में) महाराज दूधों नहाओ, पूतों फलो। दो महीने हो गये हैं।

मि० सेठ—कह जो दिया। जाओ। अब समय नहीं,

(भगवती प्रवेश करता है)

भगवती—जयराम जी की बाबू जी।

मि० सेठ—तुम इस समय क्यों आये हो भगवती?

भगवती—बाबू जी हमारा हिसाब कर दो!

मि० सेठ—(बेपरवाही से) तुम देखते हो, आज-कल चुनाव के कारण कुछ नहीं सूझता। कुछ दिन ठहर जाओ।

भगवती—बाबू जी, अब एक घड़ी भी नही ठहर सकते। आप हमारा हिसाब चुका ही दीजिए।

मि० सेठ—(जरा ऊँचे स्वर में) कहा जो है, कुछ दिन ठहर जाओ। यहाँ अपना तो होश नही और तुम हिसाब चिल्ला रहे हो।

भगवती—जब आप की नौकरी करते हैं तब खाने के लिए और कहाँ माँगने जाँय ?

मि० सेठ—अभी चार दिन हुए, दो रुपये ले गये थे।

(भागता हुआ भीतर आता है ।)

मि० सेठ—इसको बाहर निकाल दो ।

रामलखन—(भगवती के बलिष्ठ, चौडे चकले शरीर को नख से शिख तक देख कर) ई को बाहर निकारि दें, ई हम सो कब निकस, ई तो हमे निकारि दे ... ।

मि० सेठ—(बाजू से रामलखन को परे हटाकर) हट तुझ से क्या होगा ?

(भगवती को पकडकर पीटते हुए बाहर निकालते हैं ।)

निकलो, निकलो ।

भगवती—मार ले और मार ले । हमारे चार पैसे रखकर आप लक्षाधीश न हो जायँगे ।

[मि० सेठ उसे बाहर निकालकर जोर से दरवाजा बन्द कर देते हैं ।]

(रामलखन से) "तुम यहाँ खड़े क्या देख रहे ? निकलो !"

(रामलखन डरकर निकल जाता है)

मि०—सेठ—(तख्त-पोश पर लेटते हुए)—मूर्ख, नामाकूल !

[फिर उठकर कमरे में इधर-उधर घूमते हैं फिर सीटी बजाते हैं और घूमते हैं, फिर नौकर को आवाज देते हैं:—]

रामलखन, रामलखन !

रामलखन—(बाहर से) आए रहे बाबू जी !

(प्रवेश करता है)

मि० सेठ—अखबार अभी आया है कि नहीं ।

रामलखन—आ गया बाबू जी, बड़े काका पढि रहन, अभी लाये देत ।

मि० सेठ—पहले इधर क्यों नहीं लाया ? कितनी बार तुझे कहा है, अखबार पहले इधर लाया कर । ला भाग कर ।

(रामलखन भागता हुआ जाता है)

वेतन के बारे मे मजदूरों की सब शिकायतें सरकारी तौर पर सुनी जायँ और जिन लोगों ने गरीब श्रमियों के वेतन तीन महीने से अधिक दबा रक्खे हों उनके विरुद्ध मामला चलाकर उन्हे दंड दिया जाय।"

"हाँ, आपकी यह माँग भी सोलहों आने ठीक है। मै असैम्बली मे इस माँग का समर्थन करूँगा। सप्ताह में ४२ घंटे काम की माँग कोई अनुचित नहीं। आखिर मनुष्य और पशु मे कुछ तो अन्तर होना ही चाहिए। तेरह तेरह घंटे की ड्यूटी! भला काम की कुछ हद भी है।"

(धीरे-धीरे दरवाजा खुलता है और सम्पादक महोदय भीतर आते हैं)

पतले-दुबले से—आँखो पर मोटे शीशे की ऐनक चढो है। गाल पिचक गये हैं और ऐसा प्रतीत होता है जैसे आपको देर से प्रवाहिका का कष्ट है।

धीरे से दरवाजा बन्द करके खडे रहते हैं)

मि० सेठ—(सपादक से) आप बैठिए (टेलीफोन पर) ये हमारे संपादक महोदय आये है। अच्छा तो फिर संध्या को आप को सभा हो रही है। मै आने की कोशिश करूँगा। और कोई बात हो तो कहिए। नमस्कार!

(चोगा रख देते हैं।)

(सपादक से) बैठ जाइए। आप खड़े क्यों है?

संपादक—नही, नहीं कोई बात नही।

(तकल्लुफ के साथ कोच पर बैठते हैं। रामलखन अखबार लिए आता है।)

रामलखन—बडे काका तो देत नहीं रहन, मुदा जबरदस्ती लेई आये।

मि० सेठ—(समाचार-पत्र लेकर) जा, जा, बाहर बैठ!

सपादक—मैंने पहले भी निवेदन किया था कि यदि एक और आदमी का प्रबन्ध कर दे तो अच्छा हो। दिन को वह आ जाया करे, रात को मैं, और फिर प्रति सप्ताह बदली भी हो सकती है। जिससे.. ..

मि० सेठ—मैं आप से पहले भी कह चुका हू, यह असम्भव है, बिलकुल असम्भव है। अखबार कोई बहुत लाभ पर नहीं चल रहा है। इस पर एक और सम्पादक के वेतन का बोझ कैसे डाला जा सकता है ? अगले महीने पाँच रुपये मैं आप के बढ़ा दूँगा।

सपादक—मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नही देता। आखिर आँखे कब तक बारह-बारह तेरह-तेरह घंटे काम कर सकती है ?

मि० सेठ—कैसी मूर्खों की बाते करते हो जी। छः महीने मे पाँच रुपया वृद्धि तो सरकार के घर मे भी नहीं मिलती। वैसे आप काम छोडना चाहे तो शौक से छोड दे। एक नहीं दस आदमी मिल जायँगे, लेकिन ....

(रामलखन भीतर आता है।)

रामलखन—बाहर द्वि लडिका आप से मिलना चाहत रहन।

मि० सेठ—कौन है ?

रामलखन—कोई सक्टडी कहे रहन.... .

मि० सेठ—जाओ, बुला लाओ। (सम्पादक से) आज के पत्र में मेरा जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, मालूम होता है, उसका कालेज के लड़कों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

सम्पादक—(मुँह फुलाए हुए) अवश्य पडा होगा।

मि० सेठ—मैंने छात्रों के अधिकारों की हिमायत भी तो खूब की है, छात्र-संघ ने जो माँगें विश्वविद्यालय के सामने पेश की हैं, मैंने उन सबका समर्थन किया है।

कर देता है, कोई खाँसे तो बाहर निकाल देता है। छात्रों से उसका व्यवहार सर्वथा अनुचित और उनके नातेदारों से अत्यन्त अपमान-जनक है !

मि० सेठ—(कुछ उत्साहहीन होकर) तो आप क्या चाहते हैं ?

दोनो—हम योग्य प्रिंसिपल चाहते है।

मि० सेठ—(गिरी हुई आवाज़ में) आपकी माँग उचित है, पर अच्छा होता यदि आप हडताल करने के बदले कोई वैधानिक रीति प्रयोग मे लाते, प्रबंधकों से मिल जुल कर मामला ठीक करा लेते।

वही लडका—हम सब कुछ देख चुके है।

मि० सेठ—हूँ !

टाई वाला लड़का—बात यह है जनाब कि छात्र कई वर्षों से वर्तमान प्रिंसिपल से असतोष प्रकट करते आ रहे हैं, पर व्यवस्थापकों ने तनिक भी परवा नहीं की। कई बार आवेदन-पत्र कालेज की प्रबंधक-कमेटी के पास भेजे गये, पर कमेटी के कानों पर जूँ तक भी नहीं रेंगी। हार कर हमने हड़ताल कर दी है, पर कठिनाई यह है कि कमेटी काफ़ी मजबूत है, प्रेस पर उसका अधिकार है। हमारे विरुद्ध सच्चे-झूठे वक्तव्य प्रकाशित कराये जा रहे है, और हमारी खबर तक नहीं छापी जाती। आपने छात्रों की सहायता का, उनके अधिकारों की रक्षा का बीड़ा उठाया है। इसीलिए हम आपकी सेवा मे उपस्थित हुए है।

मि० सेठ—(अन्यमनस्कता से) मैं आपका सेवक हूँ। ये हमारे सम्पादक हैं, आप कल दफ्तर मे जाकर इनको अपना बयान दे दे। ये जितना उचित समझेंगे, छाप देंगे।

दोनो—(उठते हुए) बहुत बेहतर, कल हम सम्पादक जी की सेवा में उपस्थित होंगे। नमस्कार।

मि० सेठ और सम्पादक —नमस्कार।

मि॰ सेठ—(क्रोध से अखबार को तख्त-पोश पर पटककर) क्या बके जा रही हो ? बीस बार कहा है कि इन सबको सँभाल कर रक्खा करो। आ जाते हैं सुबह दिमाग़ चाटने के लिए।

[श्रीमती सेठ बच्चे के दो थप्पड़ लगाती है, बच्चा रोता है ।]

—तुझे कितनी बार कहा है, इस कमरे मे न आया कर । ये बाप नहीं, दुश्मन है । लोगों के बच्चों से प्रेम करेंगे, उनके सिर पर प्यार का हाथ फेरेंगे, उनके स्वास्थ्य के लिए बिल पास करायेंगे, उनकी उन्नति के भाषण झाडते फिरेंगे और अपने बच्चों के लिए भूलकर भी प्यार का एक शब्द जबान पर न लायेंगे ।

(बच्चे के और चपत लगाती है)

—तुझे कितनी बार कहा है, न आया कर इस कमरे मे । मै तुझे नौकर के साथ मेला देखने भेज देती (आवाज ऊँची होते होते रोने की हद को पहुँच जाती है) । स्वयं जाकर दिखा आती। तू क्यो आया यहाँ —मार खाने, कान तुडवाने ?

मि॰ सेठ—(क्रोध से पागल होकर, पत्नी को ढकेलते हुए)—मैं कहता हूँ, इसे पीटना है तो उधर जाकर पीटो यहाँ इस कमरे मे आकर क्यों शोर मचा दिया अभी कोई आ जाय तो क्या हो ? कितनी बार कहा है, इस कमरे मे न आया करो । घर के अन्दर जाकर बैठा करो ।

(श्रीमती सेठ तुनक कर खडी हो जाती हैं ।)

—आप कभी घर के अदर आये भी । आप के लिए तो जैसे घर के अंदर आना गुनाह करने के बराबर है । खाना इस कमरे में खाओ, टेलीफोन सिरहाने रख कर इसी कमरे में सोओ, सारा दिन मिलने वालों का तांता लगा रहे । न हो तो कुछ लिखते रहो, लिखो न तो पढते रहो, पढो न तो बैठे सोचते रहो । आखिर हमे कुछ कहना हो तो किस समय कहे ?

मि॰ सेठ—कौन सा मैने उसका सिर फोड दिया है, जो कुछ

"ईडियट्स"* ।

(टेलीफोन की घंटी फिर बजती है)

(और भी कर्कश स्वर में) "हेलो ! हेलो !"

"कौन ? श्रीमती सरला देवी ! (उठकर बैठता है। चेहरे पर मृदुलता और आवाज़ में माधुर्य आ जाता है) माफ कीजिएगा, मैं जरा परेशान हूँ। सुनाइए तबीअत तो ठीक है ?"

(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) "मैं भी आपकी कृपा से अच्छा हूँ। सुनाइए आपके महिला-समाज ने क्या पास किया है ? मैं भी कुछ आशा रक्खूँ या नहीं।"

"मैं आपका अत्यंत आभारी हूँ, अत्यंत आभारी हूँ। आप निश्चय रक्खें। मैं जी-जान से स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करूँगा। महिलाओं के अधिकारों का मुझ से बेहतर रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारों में कहीं नजर न आयेगा।....."

(पर्दा गिरता है।)

---

* मूर्ख ।

"ईडियट्स"* ।

(टेलीफोन की घंटी फिर बजती है)

(और भी कर्कश स्वर में) "हेलो ! हेलो !"

"कौन ? श्रीमती सरला देवी ! (उठकर बैठता है । चेहरे पर मृदुलता और आवाज में माधुर्य आ जाता है) माफ कीजिएगा, मैं जरा परेशान हूँ। सुनाइए तबीअत तो ठीक है ?"

(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) "मैं भी आपकी कृपा से अच्छा हूँ। सुनाइए आपके महिला-समाज ने क्या पास किया है ? मैं भी कुछ आशा रक्खूँ या नहीं ।"

"मैं आपका अत्यंत आभारी हूँ, अत्यंत आभारी हूँ। आप निश्चय रक्खें। मैं जी-जान से स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करूँगा। महिलाओं के अधिकारों का मुझ से बेहतर रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारों में कहीं नजर न आयेगा।...."

(पर्दा गिरता है।)

कमरे के बीच में तीनों चारपाइयाँ पास-पास बिछी हैं। बिछावन साधारण है। दरवाजे के पास वाली चारपाई पर एक स्त्री अनमनी-सी बैठी है। उसका रंग गोरा और आकृति सुन्दर है। उमर लगभग ४५ है। दूसरी चारपाई पर एक पुरुष आँखें बन्द किये लेटा है। उसे ज्वर चढा है। क्षण-क्षण में जाग कर वह स्त्री की ओर देख लेता है। फिर लम्बी साँस लेकर आँखें मींच लेता है। उसकी आयु ५० के ऊपर है। तीसरी चारपाई पर एक लड़की कम्बल ताने गहरी नींद में सोई है। सहसा स्त्री चौंक कर उठती है। नीचे कहीं तीन-चार आदमी बोलते सुन पडते हैं।]

स्त्री—(खुश होकर)—जान पड़ता है अशोक आ गया !

पुरुष—(आँखें खोल कर) अशोक आ गया है ? कहाँ है ?

स्त्री—आप उठे क्यों ? लेट जाइए। मैं देखती हूँ।

(स्त्री शीघ्रता से चली जाती है। पुरुष उसी तरह बैठा रह जाता है। स्त्री फिर आती है।)

स्त्री—(घबरा कर) आप अपनी कुछ भी चिंता नहीं करते। अशोक नहीं आया है। राम बाबू देहली जा रहे हैं। अशोक की छुट्टियाँ आज से शुरू होती है। शायद कल आयेगा।

(वे चुपचाप आँखें बन्द कर लेते हैं। स्त्री अपनी खाट पर आ बैठती है।)

पु०—(आँखें खोल कर) सुनती हो ?

स्त्री—क्या जी ?

पु०—पंडित रामसेवक ने अशोक का वर्ष-फल बनाया है। कहता है इस वर्ष ग्रह बहुत सुंदर हैं, जल्दी ही उसका नाम ससार भर मे फैल जायगा।

स्त्री—(प्रसन्नता से भर कर) सच !

पुरुष—पंडित रामसेवक माने हुए ज्योतिषी है। उनकी बात

लड़ रहा है, भइया ?' भइया नहीं बोले। और वे चले गये, उसी तरह नंगे पाँव और निहत्थे ! (कुछ रुक कर) भइया नहीं आये, माँ !

स्त्री—कल सवेरे आयेगा, बेटी !

पुरुष—(सोचकर) सपने का फल अच्छा होगा ! डरने की बात नहीं।

स्त्री, अनिता—(एक साथ) सच ! अच्छा होगा ?

पुरुष—हाँ ऐसे सपनों से उमर बढने का योग होता है।

अनिता—तब तो ठीक है माँ ! (मुडकर) ज्वर कैसा है पिताजी ?

पुरुष—(हँसकर) उतर जायगा बेटी ! (कुछ आहट पाकर ऊपर देखते है) रामदास आओ रामदास ! कैसे आये ?

रामदास—ज्वर उतरा, भइया !

दामोदरस्वरूप—उतर जायगा ! हाँ यदु आया क्या ?

रामदास—वही तो पूछता था ! अशोक भी नहीं दिखाई पडता। क्या बात है ? घर मे तो रो-रो कर पागल हो रही है।

दामोदरस्वरूप—तुम्हारी स्त्री बडी कच्ची है ! अरे ! वे क्या बालक है जो खो जायँगे !

रामदास—यह तो मै भी जानता हूँ भइया ! पर वह नहीं सुनती ! कहती है—तुम जाओ !

स्त्री—वह माँ है, रामदास ! माँ का दिल बड़ा पापी होता है ?

रामदास—और तुम क्या हो भाभी ?

दामोदरस्वरूप—अरे रामदास ! यह कम नही है। घटों से गाड़ी की गड़गड़ाहट कानों में गूँज रही है। यह अनिता तो सोते-सोते भी भइया-भइया चिल्ला रही थी (हँसता है)

रामदास—(पिघल कर) भइया ! साल मे एक बार तो आते है !

[दामोदरस्वरूप आँखें मीच लेता है। रामदास उठ कर चला जाता है। अनिता फिर मुँह लपेट कर लेट जाती है। केवल स्त्री (कलावती)

जगवन्ती, कलावती—(एक साथ) अखबार ! क्या लिखा है अखबार मे ?

रामदास—(पढता है) ··· शहर में बहुत जोर का दंगा हो गया है।

कलावती—ओह !

जगवन्ती—कॉलेज का कुछ नहीं लिखा !

रामदास—(उसी तरह पढ़ता हुआ) नगर कांग्रेस कमेटी दंगा रोकने का प्रयत्न कर रही है। उसने सरकार के साथ सहयोग किया है, लेकिन सब से बढ़ कर कॉलेज की पार्टी है······।

कलावती, जगवन्ती—(एक साथ कॉप कर)—कॉलेज की पार्टी···

रामदास—(उसी तरह) मानवता के पुजारी १५ नव-युवक पागलों की तरह आग मे बढ़े चले जा रहे है। उन्होंने सैकडों वे-गुनाह आदमियों को मरने से बचा लिया है। उनका सरगना एक खूबसूरत और तगडा जवान है। उसका नाम अशोक है···।

कलावती—(काँपकर) अशोक ! मेरा अशोक !!

जगवन्ती—लेकिन यदु का नाम नहीं है। वह जरूर उसके साथ होगा। वह अशोक को नहीं छोड सकता।

कलावती—(अनसुना करके) अशोक अब नहीं आयेगा। अशोक का नाम ·····

[वह बोल नहीं सकती, उसका हृदय उमड़ कर वह पड़ता है]

रामदास—(ढाढस के स्वर में) भाभी। रोती हो ! नहीं भाभी, जो पुण्यात्मा हैं, भगवान् उनकी रक्षा करते है।

जगवन्ती—भगवान्। ··भाभी मैं कहती थी मेरा दिल घबडा रहा है। मैं जानती थी। वेटा माँ के दिल ही में तो रहता है। भाभी ! तुम रोती हो लेकिन मैं क्या करूँ ··मैं क्या करूँ ? (रामदास से) सुनते हो मैं जाऊँगी ! मैं अभी जाऊँगी ·· ·····।

तीसरा दृश्य

(समय प्रात: ८ बजे । स्थान दामोदरस्वरूप का वही कमरा । वे लेटे हैं, तीन ही दिन मे उनकी दशा एक जन्मरोगी सी हो गयी। मुख पीला पड गया है । उठते-उठते गिर पडते हैं । पास ही कलावती बैठी है ।)

दामोदरस्वरूप—रामसेवक पंडित की बात कितनी ठीक हो रही है। बच्चा-बच्चा अशोक का नाम लेता है ।

कलावती—ऐसे पुत्र पाकर हम धन्य हुए । न जाने हमने कितने पुण्य किये होंगे…।

दामोदरस्वरूप—मैं चाहता हूँ उड कर उसके पास पहुँच जाऊँ और छाया की तरह उसके साथ लगा रहूँ (हठात् चौंक कर) कौन ?

(आवाज सुन पड़ती है) माँ, पिताजी ! यदु भइया आये है । माँ

कलावती और दामोदरस्वरूप—(एक साथ) अनिता ! यदु !!

(अनिता का प्रवेश, वह हाँप रही है)

अनिता—माँ, पिताजी ! अभी यदु भइया आये है । वे कहते है, भइया कुशल हैं ।

कलावती और दामोदरस्वरूप—(एक साथ) कहाँ है यदु ? यदु कहाँ है ? (उठने की चेष्टा करते हैं ।)

अनिता—नहीं, नही ! आप उठिए नहीं, पिताजी, वे यही आ रहे है ।

(यदु का प्रवेश । जगवन्ती और रामदास भी हैं । यदुनाथ २० वर्ष का साँवला युवक है । उसके हाथ मे चोट लगी है पर वह खुश है । सबको प्रणाम करता है ।)

कलावती और दामोदरस्वरूप—(एक साथ मिलकर) तुम जुग-जुग जिओ, बेटा ! जीते रहो, बेटा !

दामोदरस्वरूप—अशोक कैसा है, यदु ?

यदुनाथ—सब ठीक है, ताऊजी ! उन्होंने ही मुझे भेजा है कि

(सब एकदम चुप रह जाते हैं। सन्नाटा छा जाता है)

यदुनाथ—बोलो पिताजी ! क्या तुमने हमें कायर नहीं बना डाला। म्हारी करुणा, तुम्हारा प्रेम, तुम्हारी विशालता सब स्वार्थ की क्षुद्र ीमा मे बँधे है।

कलावती—यदु ! तुम क्या कहने लगे ? तुम्हे किसने बताया कि हम ाराज है। हमे तुम पर इतना गर्व है कि छाती फटी जाती है। बेटा ! प्रेम और अभिमान के आँसू है लेकिन कहो तो तुमने क्या किया ?

यदुनाथ—(शात होकर) हमने क्या किया यह हम नहीं जानते। अशोक ने जो कहा वही किया। वे आयेगे तो सुना देंगे।

कलावती—अशोक सुनावेगा ? नहीं यदु ! वह भी क्या बोलना ानता है ?

यदुनाथ—(नम्र होकर) तुम ठीक कहती हो, अशोक भइया बोलना ाही जानते। लेकिन ताई ! कर्मशील पुरुषों के वाणी होती ही नहीं, अच्छा ! मै यही कहने आया था कि हम सब कुशल हैं, आप लोग चेन्ता न करे। मै अभी जाऊँगा !

जग०, राम०, दामो०, अनि०—(एक साथ) अभी ! अभी जाओगे ! इसी वक्त ! अभी !

यदुनाथ—हाँ अभी ! अधिक देर नही ठहर सकता। उन लोगों को छोड़ कर क्या मुझे यहाँ बैठना सोहता है।

जगवन्ती—लेकिन बेटा.........!

यदुनाथ—लेकिन-वेकिन कुछ नहीं माँ ! मैं जरूर जाऊँगा। तुमने मुझे देख लिया। दूसरे बेटों की माताएँ भी तो तरस रही होंगी ! पिताजी.. ...!

रामदास—(चौककर) मैं कहता था कि गाडी शाम को..

यदुनाथ—(बीच ही में) यह कैसे हो सकता है, पिताजी ! मैं इसी गाड़ी से जाऊँगा।

(कलावती उसे छाती से भर कर माथा चूम लेती है। आँखों में पानी भर आता है! यदु चुपचाप बाहर निकल आता है। केवल अनिता साथ आती है)

अनिता—यदु भइया! तुम उन सबसे कहना कि तुम्हारी बहिन अनिता को तुम जैसे भाइयों पर बड़ा गर्व हो रहा है। वहाँ से लौटो तो एक बार यहाँ अवश्य आना—मैं बाट देखूँगी, अच्छा!

(अनिता बड़ी शीघ्रता से यह सब कुछ कह गयी उसकी आँखे भर आयीं पर वह मुसकरा उठी। यदु उसे कुछ कहे कि वह झपट कर लौट गयी वह देखता ही रह गया।)

(पटाक्षेप)

चौथा दृश्य

[वही विशाल भवन! वही दामोदरस्वरूप का कमरा, अब उसमें केवल एक चारपाई है। उस पर उनका एकमात्र बेटा अशोक लेटा है। उसे खूब तेज़ बुखार चढ़ा है। उसके सिर, हाथ और पैरों पर पट्टियाँ बँधी हैं! पट्टियों पर जगह-जगह लहू चमक आता है। उसकी आँखें बन्द है।

दामोदरस्वरूप कुण्ठित, मलिन उसके सिरहाने की तरफ फर्श पर बैठे हैं। कलावती पागल सी बेटे को देख रही है। अलग कोने में अनिता है जो क्षण में गम्भीर और क्षण में द्रवित हो उठती है!

फर्श पर दामोदर के पास रामदास, जगवन्ती, यदु और पाँच छः नवयुवक बैठे हैं। वे सब दुःख और सुख के फाँसे अशोक की ओर देख रहे हैं।

डॉक्टर भी है। वह गौर से अशोक की परीक्षा कर रहा है]

डॉक्टर—(गम्भीर होकर) मैं इन्हे होश मे ला सकता हूँ परन्तु..।

दामोदरस्वरूप—परन्तु क्या डॉक्टर साहब।

अमृतराम—कहा है, अशोक ?

दामोदरस्वरूप—(उठकर) इधर है इधर। आप, आप यहाँ आइए प्रफुल्लित होकर) अब डर नहीं है। आप आये है। परमेश्वर ने आपको भेजा है आप जरूर अशोक को बचा लेंगे।

अमृतराम—आप अशोक के पिता है ?

दामोदरस्वरूप—(गर्व से) जी हाँ! मैं अशोक का पिता हूँ। वह माँ है; वह बहिन अनिता है। मैं अशोक के लिए कुछ भी उठा न रखूँगा!

[अमृतराम गम्भीर होकर अशोक की जाँच करते हैं। उनका चेहरा चिन्तित हो जाता है।]

अमृतराम—अच्छा हो यह रात शांति से बीत जाय।

अशोक—पिताजी! (अशोक आँखे खोल देता है)

दामोदरस्वरूप—तुम बोलो मत, बेटा !

अशोक—यदु कहाँ है ?

यदुनाथ—(आगे बढ कर) मै यहां हूँ।

अशोक—तुम जानते हो यदु, हमने क्या प्रतिज्ञा की थी ? मेरे माँ-बाप को मालूम न होने देना कि अशोक अब दुनिया में नहीं है।

यदुनाथ—(चुपचाप नीची गरदन करके आँसू टपकाने लगता है) तुम ऐसा क्यों कहते हो अशोक!

(अशोक नहीं बोलता। सब फिर चिन्तातुर होकर एकदूसरे को देखते हैं)

अमृतराम—(हठात् चौंक कर) पक्षी उड़ना चाहता है!

कलावती, दामोदरस्वरूप, अनिता—(घबराकर एक साथ) क्या आ-आ ?

रामदास, जगवन्ती—(एक साथ) आप देखिए तो डॉक्टर साहब !!

अमृतराम—(सिर हिलाकर) देख तो रहा हूँ, खेल समाप्त हो चुका है। एक दिव्यात्मा पृथ्वी पर उतरी थी आज लौट गयी!

माँ ! हम मानव के रक्त को व्यर्थ न जाने देंगे।
माँ ! मानव रक्त से हम नयी मानवता को जन्म देंगे।
माँ ! हम मारे हिन्दुस्तान मे अशोक ही अशोक पैदा कर देंगे !
माँ ! तुम नये हिन्दुस्तान की माँ हो !
(सहसा कलावती उठ कर उन्हे देखती है। उसकी आँखें चमक उठती
दामोदरस्वरूप धीरे-धीरे अशोक के बालों मे उँगली फेरते हैं। अमृतराम
दर आते हैं।)

अमृतराम—बाहर अपार जनता है यदु ! अशोक को ले चलो !

दामोदरस्वरूप—(उठ कर) चलिए डाक्टर साहब हम तैयार हैं !

(और वे स्थिरगति से बाहर चले जाते हैं। उन्होंने कुहनी उठाकर
वे पोंछ ली हैं। रामदास उनके पीछे जाता है। उसकी आँखें गीली हैं।)

(पर्दा गिर जाता है)

वस्था करीब ४० वर्ष की है। वह लंबे कद की दुबली पतली साधारण
था सुन्दर स्त्री है। रंग गेहुआँ है। सूती साडी और शलूका पहने
। वेषभूषा से विधवा जान पड़ती है।]

भारती—(पद्मा के निकट आते हुए) बड़े ध्यान से क्या पढ़ रही
हो, बहन ?

पद्मा—(चौंककर) ओ भारती बहन, (खडे होकर) आओ बैठो,
बहन ?

[भारती और पद्मा दोनो कुर्सियों पर बैठ जाती हैं।]

भारती—क्या पढ रही थीं ?

पद्मा—उनकी चिट्ठी आई है।

भारती—तभी इतनी ध्यानावस्थित थीं कि मेरी बोली सुनकर भी
चौंक पडीं।

पद्मा—उनका पत्र मुझे ध्यानावस्थित करने को काफी है, यह मै
मानती हूँ, पर ध्यान-मग्न होने का एक और भी सबब था।

भारती—क्या ?

पद्मा—उस पत्र के समाचार।

भारती—क्यों, उनके मित्र की तबीयत कैसी है ?

पद्मा—वैसी ही है, क्षय ऐसी बीमारी नहीं, जो जल्दी अच्छी
हो जाय, या बिगड जाय।

भारती—फिर वहाँ से और क्या समाचार आ सकते है ?

पद्मा—सुन लो, पत्र ही सुना देती हूँ। (पत्र उठाकर पढते हुए)
"तुम्हे यहाँ का हाल पढकर आश्चर्य हो सकता है, पर इस ज़माने
मे इस तरह की चीज़े कोई ताज्जुब की बात नहीं है......

भारती—किस तरह की चीजे ?

पद्मा—वही तो पढती हूँ, सुनो। (पत्र पढ़ते हुए) "इस दर
भाभी जी का विचित्र किस्सा है। वृजमोहन की तबियत वै

पद्मा—नहीं, एक दफा उनकी बीमारी के शुरू मे गये थे।

भारती—उस समय भाभी जी का क्या हाल था ?

पद्मा—इसके ठीक विपरीत। उस वक्त वृजमोहन जी की बीमारी उनके दिवस की चिता और रात्रि का स्वप्न थी। उनकी दिनचर्या वृजमोहन जी के नजदीक बैठे बैठे चौबीस घंटे गुजारना था। डाक्टरों और नर्सों के रहते हुए वे ही उन्हे दवा देती थीं, वे ही उनका टेम्प्रेचर लेती थीं। वे ही अपने हाथों उनका सारा काम करती थीं। तभी ....तभी तो अब भाभी जी के व्यवहार से ताज्जुब होता है। (कुछ ठहर कर) तुम्हे इससे अचम्भा नहीं होता, बहन ?

भारती—(गम्भीरता से) नहीं।

पद्मा—नहीं ?

भारती—नही, बहन, बरदाश्त करने की भी हद्द होती है।

पद्मा—बरदाश्त की हद्द होती है ?

भारती—जरूर। सहन-शक्ति सीमा-रहित नहीं है।

पद्मा—ऐसे मामलों मे भी ?

भारती—हरेक मामले मे।

पद्मा—क्या कहती हो, बहन, क्या कहती हो ? पति बीमार हो, खाट पर पड़ा हो, उठने बैठने, हिलने डुलने की भी ताकत न हो और पत्नी इस तरह की वेष-भूषा करे, इस तरह के गुलछर्रे उड़ाये ! कहाँ गया भाभी जी का उनके प्रति प्रेम ? कहाँ गई भाभी जी की उनकी वह सेवा जो बीमारी के शुरू मे थी ?

भारती—तुम्हारी भाभी जी दो वर्षों तक उस तरह अपनी ज़िंदगी नहीं बिता सकती थीं जिस तरह उन्होंने वृजमोहन जी की बीमारी के शुरू में बिताना आरम्भ किया था।

बहुत बढी तब कई बार यह बात मन मे उठती थी कि उन्हे इतनी तकलीफ न सहनी पडे तो ही अच्छा है, सम्भव है यह बात यथार्थ मे उनके लिये न उठकर अपने छुटकारे के लिये उठती हो। बहन, तुम्हारी भाभी जी भी बृजमोहन जी की बीमारी के शुरू में यह कभी न चाहती होगी कि उनका जीवन समाप्त हो जाय, उन्होंने उनके अच्छे करने मे कोई बात उठा न रखी होगी परन्तु जब उन्हे यह दीख पड़ने लगा होगा कि उनका अच्छा होना अब असम्भव है तब......तब... ..

पद्मा—(क्रोध से) बहन, वह कुलटा होगी, वह व्यभिचारिणी होगी। किसी भी हालत मे, किसी भी परिस्थित मे, कोई हिन्दू स्त्री, कोई सच्ची हिंदू पत्नी, अपने पति, अपने आराध्यदेव के संबध मे ऐसी बात जाग्रत अवस्था मे तो क्या स्वप्न मे भी नहीं सोच सकती, चाहे उसका सारा जीवन नष्ट हो जाय, सारी जिंदगी बर्बाद हो जाय।

भारती—बहन, तुम जो कहती हो वह आदर्श है। अपने सारे सुखों को तिलांजलि देकर कोई स्त्री अगर अपने को पति में इस प्रकार विलीन कर सके, कोई प्रेमी यदि अपने निजत्व को अपने प्रेमी को इस प्रकार समर्पण मे दे सके तो वह मानवी नही देवी है, वह मनुष्य नहीं देवता है, लेकिन, बहन, यह मानव-मन... मानव-मन ..मानव मन ..।

[दोनों गम्भीरता से एक दूसरी की तरफ देखती हैं ।]

यवनिका-पतन

का चरणामृत उसी तरह लगा है जैसा उपक्रम मे था। उसके मुख पर शोक और चिन्ता का साम्राज्य छाया हुआ है ।]

कृष्णवल्लभ—(खाँसकर) दो वर्ष हो गये न, प्रिये ? दो वर्ष पहले की इसी महीने की इसी तारीख को पहले पहल बुखार आया था।

पद्मा—हाँ, प्राणनाथ, दो वर्ष हो गये।

कृष्णवल्लभ—वृजमोहन दो वर्ष से कुछ ही ज्यादा तो बीमार रहा?

पद्मा—आप न जाने क्या क्या सोचा करते है।

कृष्णवल्लभ—(फिर खाँसते हुए) क्यों, प्यारी, यह कैसे न सोचूँ ? जो क्षय उसे था वही मुझे है, और वहाँ से लौटने के थोड़े दिन बाद ही हो भी गया।

पद्मा—इससे क्या होता है, क्या इस बीमारी के रोगी अच्छे नहीं होते ?

कृष्णवल्लभ—वृजमोहन तो नहीं हुआ और मैं भी नहीं हो रहा हूँ।

पद्मा—आप हो जायँगे।

कृष्णवल्लभ—अभी भी तुम्हे आशा है ? प्रिये, आशा की जगह न होते हुए भी कई दफ़ा मनुष्य आशा को मन मे ठूँसने का बलात्कार करता है। इस तरह की आशा अपने आपको धोखा देने की कोशिश करना है। यह झूठी आशा है; अस्वाभाविक आशा है।

पद्मा—(जोर से) क्या कहते हैं, नाथ, क्या कहते हैं, मुझे आशा नहीं विश्वास, पक्का विश्वास है, कि आप अच्छे हो जायंगे।

कृष्णवल्लभ—(पद्मा की तरफ करवट लेकर खाँसते हुए) और तो अच्छे होने के कोई आसार नहीं हैं, हाँ तुम्हारी तपस्या मुझे अच्छा कर दे तो दूसरी बात है।

[पद्मा कोई उत्तर नहीं देती। उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं।]

कृष्णवल्लभ—प्यारी, तुम मानवी नहीं देवी हो। इन दो सालों

जब मैं अच्छा था तब मुझे न आता था। (खाँसते खाँसते फिर रुक जाता है। कुछ ठहर कर) प्राणेश्वरी, मै वे सारे सुख, सारे आनन्द फिर भोगना चाहता हूँ; लेकिन... . लेकिन प्रिये......(चुप हो जाता है)

पद्मा—(आँखें पोछते हुए) लेकिन कुछ नहीं, हृदयेश्वर, आप के अच्छे होते ही हम वे सुख फिर भोगेगे ।

[कृष्णवल्लभ कोई उत्तर नहीं देता। थकावट के कारण पद्मा का हाथ छोडकर आँखें बद कर लेता है।]

पद्मा—(खडे होकर) क्यों, थकावट मालूम होती है ?

कृष्णवल्लभ—यों ही थोडी सी।

पद्मा—मैंने कई दफा कहा आप ज्यादा न बोला करे ।

कृष्णवल्लभ—तुमसे बोलकर, पुराने सुखो की याद कर जो थोड़ा सा आनन्द मिल जाता है, उसे भी खो दूँ !

[पद्मा कोई जवाब नही देती। कृष्णवल्लभ भी कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता रहती है ।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये एक बात जानती हो ?

पद्मा—क्या, नाथ ?

कृष्णवल्लभ—मेरे मन मे जब जब यह उठता है कि मै अच्छा न होऊँगा तब तब मेरे सामने एक चित्र खिंच जाता है।

पद्मा—आपके मन में ऐसी बात ही नहीं उठनी चाहिये।

कृष्णवल्लभ—उसे न मैं रोक सकता हूँ और न तुम। (खाँसता है। कुछ रुककर) मै तुम से एक प्रार्थना करता हूँ।

पद्मा—प्रार्थना ! प्राणेश्वर, आप हमेशा आज्ञा दे सकते हैं।

कृष्णवल्लभ—पर तुम मानती कहाँ हो ?

पद्मा—मै आपकी आज्ञा नहीं मानती ?

कृष्णवल्लभ—और सब बातों मे मानती हो, पर एक मामले में नहीं।

कृष्णवल्लभ—पहले मैं भी ऐसी समझता था पर अब नहीं समझता।

पद्मा—तो अब आप उसे बड़ी साध्वी, बडी धर्मात्मा समझते हैं?

कृष्णवल्लभ—कुलटा और पापिनी तो नहीं समझता। (खाँसता है। कुछ रुककर) एक बात और कहूँ?

पद्मा—सब कुछ सुनने का तो मैंने वचन दे ही दिया है।

कृष्णवल्लभ—अगर तुम वैसी होती तो मुझे आज अपनी बीमारी का इतना दुख न होता।

पद्मा—(आँखो में आँसू भर कर) नाथ, आप यह क्या कह रहे हैं? क्या कह रहे है?

[कृष्णवल्लभ कोई उत्तर न देकर खाँसने लगता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, कभी कभी मुझे अपने से ज्यादा तुम्हारी चिंता हो जाती है। जब जब मेरे मन मे उठता है कि मैं अच्छा न होऊँगा, तब तब मेरे जीने की इच्छा तो और प्रबल हो ही जाती है, तुम्हारे साथ भोगे हुए सुख भी याद आने लगते हैं, और उन्हे फिर से भोगने के लिए भी मै अधीर हो उठता हूँ, तुम्हे छोडकर जाना पड़ेगा शायद इसीलिए जाने का मुझे इतना दु:ख होता है, पर इन सब बातो के सिवा जिस चीज से मै सबसे ज्यादा तलमला उठता हूँ, वह है तुम्हारी इस वक्त की अवस्था, मेरे बाद तुम्हारा क्या होगा, इसकी कल्पना। काश तुम भी भाभी के समान हो जातीं तो मैं इस फिक्र से तो... .

[कृष्णवल्लभ को खासी का जोर से एटैक होता है। खाँसते खाँसते वह बैठ जाता है। पद्मा घबड़ाकर उसकी पीठ सुहलाती है। कुछ देर में उसकी खांसी रुकती है और वह एकदम थककर लेट जाता है तथा आँखें बंद कर लेता है। जीने से चढकर स्वच्छ वस्त्रों में एक मुनीम का प्रवेश]

मुनीम—श्रीनाथ द्वारे के समाधानी वहाँ के छप्पन भोग का

कृष्णवल्लभ—पहले मै भी ऐसी समझता था पर अब नहीं समझता।

पद्मा—तो अब आप उसे बडी साध्वी, बडी धर्मात्मा समझते है?

कृष्णवल्लभ—कुलटा और पापिनी तो नही समझता। (खाँसता है। कुछ रुककर) एक बात और कहूँ?

पद्मा—सब कुछ सुनने का तो मैने वचन दे ही दिया है।

कृष्णवल्लभ—अगर तुम वैसी होतीं तो मुझे आज अपनी बीमारी का इतना दुख न होता।

पद्मा—(आँखो में आँसू भर कर) नाथ, आप यह क्या कह रहे हैं? क्या कह रहे है?

[कृष्णवल्लभ कोई उत्तर न देकर खाँसने लगता है।
कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, कभी कभी मुझे अपने से ज्यादा तुम्हारी चिता हो जाती है। जब जब मेरे मन मे उठता है कि मै अच्छा न होऊँगा, तब तब मेरे जीने की इच्छा तो और प्रबल हो ही जाती है, तुम्हारे साथ भोगे हुए सुख भी याद आने लगते हैं, और उन्हे फिर से भोगने के लिए भी मै अधीर हो उठता हूँ, तुम्हे छोडकर जाना पड़ेगा शायद इसीलिए जाने का मुझे इतना दुःख होता है, पर इन सब बातों के सिवा जिस चीज से मै सबसे ज्यादा तलमला उठता हूँ, वह है तुम्हारी इस वक्त की अवस्था, मेरे बाद तुम्हारा क्या होगा, इसकी कल्पना। काश तुम भी भाभी के समान हो जाती तो मै इस फिक्र से तो....

[कृष्णवल्लभ को खाँसी का जोर से एटैक होता है। खाँसते खाँसते वह बैठ जाता है। पद्मा घबडाकर उसकी पीठ सुहलाती है। कुछ देर मे उसकी खाँसी रुकती है और वह एकदम थककर लेट जाता है तथा आँखें बंद कर लेता है। जीने से चढ़कर स्वच्छ वस्त्रों मे एक मुनीम का प्रवेश]

मुनीम—श्रीनाथ द्वारे के समाधानी वहाँ के छप्पन भोग -

वैष्णव हैं और इतने पर भी महाराज श्री की मेरे पर यह कृपा! (खाँसता है। कुछ रुककर) समाधानी जी, महाराज श्री की इस अनुकपा से मुझे रोमाच हो रहा है।

समाधानी—आपके से अगणित वैष्णव! क्या कहे है, श्रीमान? आपसे तो आप ही है।

कृष्णवल्लभ—(आँखों मे आँसू भरकर) कैसी मेरी बदकिस्मती कि जिस छप्पन भोग के दर्शन की अभिलाषा वर्षो से थी उसके मौके पर मेरा यह हाल है।

समाधानी—श्रीनाथ जी आपको शीघ्र स्वस्थ करिहै। श्रीमान न पधार सके तो श्रीमती जी।

कृष्णवल्लभ—(पद्मा की तरफ देखकर) ये......हाँ, ये जरूर जा सकती है। और अगर ये जायँ तो मुझे तो उससे जितनी खुशी होगी उतनी किसी दूसरी चीज से हो नही सकती। (कुछ खाँसकर) छप्पन भोग का क्या कार्यक्रम है, समाधानी जी?

समाधानी—पहले वर्ष भर के उत्सवन के मनोरथ होयँगे और अन्त मे प्रभु छप्पन भोग आरोगेगे। (पद्मा से) श्रीमती जी, आप अवश्य पधारे। महाराज श्री ने आज्ञा करी है कि श्रीमान न पधार सके तो आपके पधारवे सूँ महाराज श्री कूं परम हर्ष होयगो आप पधारकर श्रीमान के स्वस्थ होयवे प्रभु सन्निधान में प्रार्थना करे। श्रीनाथ जी श्रीमान कूँ शीघ्र ही स्वास्थ्य प्रदान करहिंगे।

[पद्मा कोई जवाब नहीं देती। कृष्णवल्लभ पद्मा की ओर देखता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

कृष्णवल्लभ—(मुनीम से) मुनीम जी, समाधानी जी थके माँदे आये है। आपको अतिथि-आलय मे अच्छी तरह ठहराइए। महाराज की आज्ञा पर हम लोग विचार करेंगे। (खाँसता है)

[पद्मा कोई उत्तर नहीं देती । कृष्णवल्लभ खाँसता है । कुछ देर निस्तब्धता रहती है ।]

कृष्णवल्लभ—पंद्रह बीस दिन से ज्यादा नहीं लगेंगे, प्रिये !

[पद्मा —फिर भी कोई उत्तर नहीं देती । कृष्णवल्लभ पद्मा की तरफ देखता है । कुछ देर फिर निस्तब्धता रहती है ।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, मेरी एक प्रार्थना मानोगी ?

पद्मा—फिर वही बात, नाथ ? प्रार्थना ? आप आज्ञा दें ।

कृष्णवल्लभ—(खाँस कर) तो मैं आज्ञा देता हूँ, प्राणप्यारी, तुम जाओ, श्रीनाथ द्वारे जरूर जाओ; जरूर ।

[पद्मा कोई जवाब नहीं देती । उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं ।]

कृष्णवल्लभ—प्रिये, श्रीनाथ जी के सन्निधान में मेरे स्वस्थ होने के लिए, अपने सौभाग्य के लिए, प्रार्थना......प्रार्थना करना, प्राण-प्यारी । (आँसू भर आते हैं ।)

[पद्मा रो पड़ती है । कृष्णवल्लभ को फिर जोर से खाँसी का दौरा होता है ।]

यवनिका-पतन

उपसंहार

स्थान—कृष्णवल्लभ के मकान का बरामदा

समय—सन्ध्या

[दृश्य वैसा ही है जैसा उपक्रम में था । उदय होते हुए सूर्य के स्थान पर डूबते हुए सूर्य की किरणें बाहर के उद्यान को रँग रही हैं । एक तरफ पद्मा के दो सूट केस होल्ड ऑल, टिफिन केरियर, सुराही इत्यादि सामान बँधा हुआ रखा है । पद्मा अपने सामान को देख रही है । उसने फिर से रेशमी साड़ी ब्लाउज, रत्न-जटित आभूषण धारण कर लिये हैं । उसका मुख प्रसन्न तो नहीं कहा जा सकता लेकिन उस पर उस तरह का शोक और चिन्ता का साम्राज्य नहीं है, जैसा मुख्य दृश्य में था । भविष्य के सुख

दस हज़ार

उदयशंकर भट्ट

पात्र

- विसाखाराम : सीमा-प्रांत का एक सेठ
- सुंदरलाल : विसाखाराम का लड़का
- राजो : विसाखाराम की लड़की
- राजो की माँ : सेठ की पत्नी
- मुनीम

समय:—शाम के पाँच बजे।

[सीमा-प्रांत के एक नगर में एक दुमंजिला मकान। ऊपर मंजिल में एक बड़ा-सा कमरा, जिसमें दो दरवाजे हैं। एक सीढ़ी के पास और दूसरा मकान के भीतरी भाग में जाता है। गली की तरफ दो खिड़कियाँ हैं। भीतर कमरे में एक बड़ी खाट है, जिस पर मैला-बिस्तर बिछा है। पूर्व की तरफ कोने में, एक चौकी है, उसके सामने आले में ठाकुर जी का एक सिंहासन है। उसमें कुछ पीतल की मूर्तियाँ हैं। उन पर गेंदे के फूल की माला चढ़ी है। आले की कील में एक रुद्राक्ष की माला है। हाथ की लिखी हुई छोटी-सी दो किताबें है। कमरे में कुछ तस-वीरें हैं—एक रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की, जिसमें राम के राज्याभिषेक का दृश्य है, हनुमान माला तोड़ रहे हैं। दूसरी तसवीर एक काली की है। कमरे में एक मोढ़ा रखा है और एक टूटी हुई कुर्सी, जिसका बेंत टूटा हुआ है। एक छोटी-सी मेज एक कोने में रखी है। उस पर एक लोटा और उसके ऊपर एक गिलास रखा है। दो खूँटियाँ गड़ी हुई हैं, उनमें एक पर एक पगड़ी और दूसरी पर एक दुपट्टा और एक मैला

मुनीम के हाथ में देकर) लो पढो, सब बरबाद कर दिया। भला बाहर निकला ही क्यों ?

मुनीम—सेठजी, सुंदरलाल का कोई कसूर नहीं है। उगराही को उसे तुम्ही ने तो भेजा था।

[खत हाथ मे लेकर पढने लगता है।]

विसाखा०—बरबाद हो गया मैं तो मुनीमजी ! हाँ, जरा जोर से पढो।

मुनीम—(चौक कर) है ! यह तो सुंदरलाल की ही लिखावट है ! लिखता है—'पिता जी, अगर मेरी जिदगी चाहते हो तो किसी आदमी के हाथ खैबर फाटक के बाहर आज ठीक शाम के आठ बजे दस हजार रुपया पहुँचा दो। पुलिस को, या कोई आदमी लेकर आये तो खान कहता है, मुझे मरा ही समझो। इन लोगों ने मुझे बडी तकलीफ दी है। शायद नरक की कोई भी यातना इस से अधिक नहीं हो सकती। मुझे विश्वास है, आप मेरी रक्षा करेगे।

आपका पुत्र,

सुदरलाल।'

नीचे खान ने खुद पश्तो मे लिखा है—

'अम तुमको इत्तला देता है, तुम आज बुधवार को शाम के आठ बजे दस हजार रुपया खैबर फाटक के बाहर पहुँचा दे, नई तो तुम्हारा लडका को मार डालेगा।

अमीरअली खां।'

[मुनीम खत रख कर विसाखाराम की ओर देखने लगता।]

मुनीम—सेठ जी, दस हजार की क्या बात है। आज ही तो बुधवार है। अगर कहे तो मुहम्मद बक़स को न देकर दस हजार का इंतजाम कर लूँ। रुपया तो है हो।

विसाखा०—(उठकर) आने रुपए का सूद है मुनीमजी ! दस हजार यों ही जायँगे ? हे भगवान् ! कंगाल कर दिया !

राजो की माँ—मैं कहू हूँ, मेरा गहना लेकर बेच दो और मेरे लडके को बचा लो।

मुनीम—घबराने की क्या बात है माताजी, सेठजी को भी तो आप से कम फिकर नहीं है।

विसाखा०—हाँ सो तो है ही। मै भी कब सोया हूँ रात में। दिन-रात चिता लगी रहती है। सुंदर मेरी आँखों के सामने झूमता रहे है उसके बचपन की बात याद आया करे है। इधर इब्राहीम रुपया देने मे ही नहीं आवे। क्या तुमने उसके सूद का हिसाब लगाया मुनीमजी? कितना बने है उसके ऊपर? खांड कहाँ रखवाई है, गोदाम मे न? देखो, तालियाँ अपने पास ही रखना। न हो तो मुझे दे जाओ।

मुनीम—सेठजी, सुंदरलाल के लिए क्या हुक्म है। रुपए का इंतजाम करूँ? बहुत थोडा वखत है। (सेठ की ओर देखता है) पन्द्रह हजार तिजोरी मे रखकर आया हूँ।

विसाखा०—दस हजार! न कम न थोडा। अरे और कोई इतजाम नही हो सके है मुनीमजी! पुलिस को खबर क्यों न कर दो!

मुनीम—पुलिस भी क्या कर लेगी सेठजी, पुलिस भी तो डरे है। और उसे क्या मालूम नहीं है? पर वह करे तब तो! सेठजी मै तो आप को सलाह न दूँगा कि आप और कोई इतजाम करे। नहीं तो आप लडके से हाथ धो बैठेंगे। न करे ईश्वर?

राजो की माँ—तुम किस ससै मे पडे हो मुनीमजी! लो मेरा गहना ले जाओ। (उतारकर सामने रख देती है) लो मेरे लडके को ला दो। चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

विसाखा०—क्या सब मेरे प्रान खाये जाओ हो। गहना भी कौन घर का नहीं है।

मुनीम—सेठजी देर हो रही हुक्म दो।

राजो की माँ—कह तो रही हूँ, पहले जाओ। पठानों को दे देना।

राजो की माँ—कमाया है तो क्या फायदा। न तीरथ, न जप तप, न वर्त। कभी हरिद्वार भी न ले गये। मैं तो तुम्हारा पैसा जानती ही नहीं। चार कोठियाँ है और हम इसी गली में पड़े सड़ रहे हैं। आज तीन-चार लाख रुपए के मालिक हो। एक पैसा भी कभी दान न किया। ऐसा रुपया किस काम का ?

विसाखा०—(उठकर) आग लगा दे घर मे ! मुझे क्या ? मुनीम ने आज की बिक्री का कोई हिसाब ही नहीं दिया। बेईमान हो गया है। हे रामजी, (लेट जाते है) दस हजार रुपया इस नालायक के... मुनीम कहाँ गया है राजो ?

राजो की माँ—और रुपया होता ही किस लिए है ? इसमे सुदर का क्या अपराध है भला ?

विसाखा०—मुनीम कहाँ गया ? शायद उगराही करने गया होगा। हे रामजी, दया करो ! (लेट जाता है।)

[सुदरलाल और मुनीम का प्रवेश। राजो की माँ सुदरलाल को देखकर फूट फूट कर रोने लगती है। राजो भाई से लिपट जाती है। लडका दौड़कर पहले विसाखाराम, फिर अपनी माँ के पैर छूता है।]

विसाखा०—(पुत्र को देखकर) आगया रे ! बडी खुशी हुई।

राजो की माँ—आज बेटे को देखकर छाती ठंढी हुई। (उससे लिपट जाती है) मेरी आँखों के तारे !

राजो—मेरे भैया ! उसके गले से लिपट जाती है।

राजो की माँ—कैसा दुबला हो गया इतने ही दिन मे !

सुन्दर०—हाँ माँ ! भगवान् इन राक्षसों के पजे मे न डाले। देख, मार-मार कर तमाम देह सुजा दी है। (देह दिखाकर) हड्डी-हड्डी दुख रही है।

विसाखा०—बड़ा अच्छा हुआ बेटा ! कैसे आये ? क्या वैसे ही उन्होंने छोड दिया ? मुनीमजी, आज उगराही में क्या मिला ?

कृष्णचन्द्र—कहो जी, खन्ना से कैसी निपटी ?

वेनीशकर—अरे निपटी कैसी ? मैं कोई दबने वाला थोडे ही हूँ ! कस के काम करता हूँ और दुनिया को ठेंगे पर मारता हूँ।

रामेश्वर—पूरा एक महीना—और वीवी को डाक्टरों ने जवाब दे दिया ! और एक दूधपीता बच्चा !

(रामेश्वर की बात कोई नहीं सुनता)

कृष्णचन्द्र—लेकिन साला है बदमाश ! मै कहता हूँ वेनीशंकर, जब तक यह आदमी यहाँ है तब तक हम लोग कोई सुख-चैन से नहीं रह सकते।

वेनीशंकर—(मुसकराता हुआ) बडी जल्द टिकट कटने वाला है !

रामेश्वर—(कृष्णचन्द्र से) भाई, तुम्हारे वहनोई तो वडे मशहूर डाक्टर है ! जरा मै उन्हे दिखलाना चाहता हूँ।

कृष्णचन्द्र—हाँ-हाँ चलना। (वेनीशकर की तरफ घूम पडता है) न जाने कब से सुन रहा हूँ, लेकिन देखता हूँ वैसा ही डटा हुआ है, टस-से-मस नहीं होता, उस्ताद, अगर वीवी-बच्चों का ख्याल न होता तो फिर मै बतलाता !

[देवनारायण का प्रवेश। चुपचाप आकर रामेश्वर के पास बैठ जाता है। वेनीशकर देवनारायण की ओर घूमता है]

वेनीशकर—कहो जी देवनारायण, कोई नई खबर ?

देवनारायण—जनाब, आज टामसन साहेब ने मिस्टर खन्ना को बहुत डॉटा। मै वैठा हुआ सुन रहा था, खन्ना साहेब की घिग्घी बँध गई, जवाब तक न देते बना !

कृष्णचन्द्र—क्या कहा ? तो बात यहाँ तक पहुँच गई—वह मारा !

(रामेश्वर तीनों को एक बार गौर से देखता है—उसके बाद कृष्णचन्द्र से)

रामेश्वर—भाई कृष्णचन्द्र, तो आज शाम को चलोगे न ?

देवनारायण—(दरवाजे की तरफ देखता हुआ) और दुनिया ठीक करती है तुम्हारी बात सुनने वाला कौन है ? फिर तुम्हारी बात या मे कोई सुने ही क्यों ?

रामेश्वर—देवनारायण ! हृदय की पीड़ा को प्रकट करना क्या कोई । है ?

देवनारायण—हाँ, है। तुममे और तुम्हारी पीडा मे किसी को ई दिलचस्पी नही। जब तक तुम दूसरे से उसके हित की बात ते हो, वह तुमसे मिलकर प्रसन्न होगा, तुम्हारे साथ हँसे-बोलेगा र जहाँ तुम उससे अपने अपने सुख-दुख की बात करने लगते हो, का जी ऊब जाता है। तुम्हारे सुख से उसे कोई मतलब नहीं— ारे दु ख की उसे परवाह नहीं।

रामेश्वर—देवनारायण, तुम क्या कह रहे हो ? दुनिया मे मान- । नाम को भी कोई चोज है।

देवनारायण—मानवता ! हा-हा-हा ! जिसे तुम मानवता कहते हो ढकोसला है—छल है। जो मानवता है, वह बड़ी कुरूप चीज है श्वर ! मानवता के माने है एक दूसरे को खा जाना; मानवता के ने है स्वयम् सुखी बनने के लिए दूसरे को दुखी बनाना। विजय— रों पर विजय दूसरों की गुलामी यही मानवता है।

[रामेश्वर एक ठडी साँस लेकर देवनारायण की ओर देखता है।)

रामेश्वर—तुम जो कुछ कह रहे हो वह मेरी समझ मे नहीं आ । है। देवनारायण, जानते हो—घर मे पत्नी मरणासन्न पडी है र अबोध बच्चा बिना ममता के, प्यार के भूल मे फिसल रहा है; र मैं निराश, टूटा हुआ यहा बैठा हूँ। देवनारायण, क्या करूँ ?

देवनारायण—मै क्या बताऊँ ? यह बला तुम्हारी है, तुम्हीं भुगतो, र उफ मत करो। आखिर अपनी मुसीबतों को बयान करने से हे क्या मिल जायगा ? सहायता ? नही, दुनिया मे कोई ऐसा नहीं

काम न करूँगा। खन्ना के खिलाफ ही क्यों—किसी के खिलाफ नहीं।

बेनीशंकर—हाँ जनाब! खन्ना साहेब की नजर में चढ़ना चाहते है। म्याँ यह ढोंग कब तक चलेगा ?

रामेश्वर—(कड़ी आवाज में) क्या कहा ?

कृष्णचन्द्र—(बेनीशंकर से) चलो जी, इनकी तबीयत ठीक नहीं है। हम लोग चलते हैं हाँ, देवनारायण को साथ ले लेना चाहिये। वह है कहाँ ?

(सब लोग जाते हैं ।)

रामेश्वर—ये लोग भी दूसरे को मिटाने पर तुले हुए है, आखिर क्यों ?

(महँगू चपरासी का प्रवेश)

महँगू—सरकार, डाक मेज पर रखी है । (रामेश्वर को गौर से देखता है) अरे सरकार, आज बहुत उदास है, तबीयत तो ठीक है ?

रामेश्वर—नहीं महँगू, आज न जाने कैसा लग रहा है।

महँगू—सरकार घर चलें। छुट्टी ले लें। मैं भी चल रहा हूँ। मालकिन की कैसी हालत है ?

रामेश्वर—क्या बतलाऊँ, महँगू! डाक्टर कहता है कि दो-एक दिन की मेहमान है।

(महँगू की आँखों में आँसू आ जाते हैं।)

महँगू—सरकार, भगवान् पर विश्वास रखें। जो कुछ भाग्य में है, वह होगा। मोहन भी अभी बिलकुल बच्चा है !

[देवनारायण का प्रवेश। वह मुसकरा रहा है। वह आकर रामेश्वर की बगल में बैठ जाता है ।]

देवनारायण—सुना, परमानन्द को टॉमसन ने अभी-अभी डिसमिस कर दिया !

रामेश्वर—(चौंककर) क्या कहा ? यह क्यों ?

परीक्षा

(रामकुमार वर्मा)

पात्र

डॉ० राजेश्वर रुद्र, डी० एस्-सी०—विश्वविख्यात वैज्ञानिक
आयु ५४ वर्ष

प्रोफेसर केदारनाथ, एम्० ए०—अंग्रेजी के प्रोफेसर—आयु ५० वर्ष

मिसेज रत्नानाथ, बी० ए०—प्रो० केदारनाथ की पत्नी—आयु २० वर्ष

मि० किशोरचन्द्र—डॉ० रुद्र का क्लर्क—आयु ३० वर्ष

रोशन—डॉ० रुद्र का नौकर—आयु ४० वर्ष

[समय—सात बजे शाम। डॉ० राजेश्वर रुद्र, डी० एस्-सी० का आफिस। कमरे में संसार के वैज्ञानिकों के चित्र और चार्ट लगे हुए हैं। बीच में एक टेबुल है जिस पर फूलदान, फोन, कागज़, कलम आदि रक्खे हैं। आसपास दो-तीन कुर्सियाँ और एक काउच रखा हुआ है। दाहिने ओर एक टेबुल और कुर्सी है टेबुल पर टाइपराइटर और कागज़ आदि हैं। डॉ० रुद्र का क्लर्क किशोर टाइपराइटर पर काम कर रहा है। एक नौकर झाड़न से टेबुल, कुर्सी और चित्र सावधानी के साथ साफ कर रहा है। कमरे में सन्नाटा है। केवल टाइपराइटर की आवाज़ हो रही है। एक मिनट बाद कमरे में घंटी बजती है, बाहर से शायद किसी ने स्विच दबाया है। किशोर रुक कर नौकर की ओर रुख करता है]

कि०—रोशन, देखो बाहर कौन है?

बड़ी तारीफ कर रहे थे। कहते थे—आप उनके पुराने दोस्त हैं। वे तो आपके ठहरने से खुश ही होते !

के०—यह उनकी मुहब्बत है। सोचिए, इतना नाम कमा कर वे वैसे ही सादे बने हुए है। दुनियाँ मे उनका कितना नाम है ! सायंस के अखबार तो उनकी तारीफों से भरे रहते है। हम लोगों को अभिमान है कि वे हमारे ही देश के है।

कि०—जी हाँ।

के०—कब तक आवेगे ?

कि०—और दिन तो इस वक्त तक आ जाते थे, लेकिन आज न जाने क्यों देर हो गयी ? शायद काम पूरा न हुआ हो। आजकल वे एक बड़ी गहरी खोज मे लगे हुए हैं।

के०—अच्छा ?

कि०—कहिये तो उन्हे फोन करूँ ? (फोन हाथ में लेता है)

के०—नही रहने दीजिए। उनके काम में विघ्न होगा। जब फुरसत पायेंगे, चले जायेंगे। तब तक मैं जरा पोस्ट आफिस तक होता आऊँ। पोस्ट मास्टर से कुछ बात करना है। काश्मीर का एड्रेस भी देना है।

कि०—पोस्ट आफिस तो बन्द हो गया होगा।

के०—लेकिन मुझे पोस्ट आफिस क्वार्टर्स जाना है।

कि०—जाने की क्या जरूरत है ? फोन कर सकते है।

के०—नहीं। उनसे मिलना भी है। यों ही टहलता हुआ जाऊँगा। हाँ, अभी कुछ देर बाद आ सकता हूँ। आप डा० रुद्र को मेरा कार्ड दे दे।

कि०—(नम्रता से) बहुत अच्छा।

[केदार का प्रस्थान बायें दरवाजे से। किशोर अपने टेबुल पर आकर फिर टाइप करने लगता है। दो मिनट बाद रोशन आकर किशोर से कहता है—]

के टेबुल पर सजा दी हैं। पढ़ने की जगह निशान भी लगा दिये है। बाकी पत्र है।

रु०—(कुर्सी पर आराम से टिकते हुए) कहाँ के है ? सुनाओ।

कि०—(पत्रो को उलट-पुलट कर एक पत्र निकालते हुए) यह फ्रैंकलिन इन्स्टीट्यूट वाशिंगटन के सेक्रेटरी का है। (पढते हुए) प्रिय प्रोफेसर रुद्र, आपका आविष्कार विश्व की सपत्ति है, इन्स्टीट्यूट ने आप के नाम की अपनी सदस्यता के लिए सिफारिश की है। शीघ्र ही महीने भर के भीतर आप को सूचित करेगे। बधाई। एच. एम. जोन्स, सेक्रेटरी।

रु०—(किंचित् स्मिति के साथ) एफ० एफ० आइ। फैलो अव् दि फ्रैंकलिन इन्स्टीट्यूट। अच्छा लिखो। (बोलते हैं, किशोर लिखता है।) प्रिय मिस्टर जोन्स, इन्स्टीट्यूट ने मुझे जो सम्मान प्रदान किया है उसके लिए मै धन्यवाद देता हूँ, मेरी सेवाएँ सदा इन्स्टीट्यूट को समर्पित हैं। भवदीय—

कि०—(दूसरा पत्र निकालते हुए) कारनेगी इन्स्टीट्यूट बोस्टन का है। (पढते हुए) प्रिय डाक्टर रुद्र, रोने को हँसी में परिवर्त्तन करने वाला आपका आविष्कार ससार के दुःख और कष्ट को दूर कर देगा। कृपया हमारी बधाई स्वीकार करे। जी. हैमिल्टन, रजिस्ट्रार।

रु०—प्रिय मिस्टर हैमिल्टन, पत्र के लिए धन्यवाद। संसार की शान्ति और सुखके लिए यह एक विनीत भेंट है। धन्यवाद भवदीय—

कि०—(तीसरा पत्र निकालते हुए) यह पत्र इलाहाबाद के विज्ञान के सम्पादक का है। लिखते हैं, सेवा मे डॉ. राजेश्वर रुद्र, महोदय, आपने मस्तिष्क सम्बन्धी जो खोज की है और तत्सम्बन्धी जो पारिभाषिक शब्द दिये है उनसे विज्ञान-साहित्य के एक बडे अभाव की पूर्ति हुई है। इस विषय मे आगे का लेख भेजने की कृपा करें। भवदीय, सत्यप्रकाश, सम्पादक।

के०—मुझे आज ही जाना है। मैं परसों काश्मीर पहुंच जाना चाहता हूँ।

रु०—लेकिन फिर भी मेरे पास ठहर सकते थे !

के०—लेकिन ठहर नहीं सका। माफ करना डॉक्टर !

रु०—आखिर है क्या बात ? ठहरे कहाँ हो ?

के०—मिस्टर जे० के० वर्मा के यहाँ। जानते होंगे ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेंट है।

रु०—हाँ, हाँ, जानता हूँ। वे तो यहीं रहते हैं, कनाट सरकस में !

के०—उनकी पत्नी श्रीमती शीला मेरी पत्नी की सहेली है। वहीं ठहरना पड़ा। फिर सिर्फ एक दिन की बात......

रु०—अरे ठहरो। सब बातें एक साथ मत कहो। पहले यह बतलाओ, तुम्हारी पत्नी...तुम्हारी पत्नी तो...तुम तो अकेले थे...? ऐं, जरा ठहरो (किशोर से) मि० किशोर, तुम जरा बाहर के कमरे में बैठो। अभी बुलवाऊँगा। (किशोर गम्भीरता के साथ बायें दरवाजे से जाता है, रुद्र केदार की ओर मुड कर) हाँ, तो यह कैसे .तुम्हारी पत्नी...!

के०—(झेंपते हुए) फिर..... फिर मैंने दूसरी शादी कर ली।

के०—(प्रसन्नता से उछल कर खड़े होते हुए) ओ अच्छा प्रो० केदार, बधाई। तुम में जिंदगी है। तबीयत है ! तुमने खबर नहीं दी ? (रोशन को पुकार) ओ रोशन (रोशन का बायें दरवाजे से प्रवेश) जरा चाय और मिठाइयाँ लाओ।

के०—नहीं, डॉक्टर रहने दो। मैं अभी नाश्ता करके आ रहा हूँ।

रुद्र०—अच्छा ? श्रीमती केदार कहाँ है ? (नौकर से) जाओ सिगरेट और पान-इलायची लाओ।

(रोशन बाहर जाता है)

के०—वे वहीं है, श्रीमती शीला के साथ। मै जब चला था तो खूब बातें हो रही थीं। बहुत दिनों के बाद मिली है न ?

रहन-सहन बहुत सीधा-सादा है। बरताव तो बिलकुल मेरी तबीयत के मुताबिक है।

रुद्र—बधाई। खुशी है! इस उमर मे तुमको ऐसे ही साथी की जरूरत थी! (रोशन सिगरेट, पान-इलायची लाता है।) ओ, सिगरेट पियो, पान खाओ। रोशन, बाहर। (रोशन बाहर जाता है) ओ अच्छा! (केदार की सिगरेट जलाता है।)

के०—(सिगरेट का धुँआ छोडते हुए) मै तो पहले सोचता था कि वे मुझ से शादी करेंगी भी या नहीं?

रुद्र०—शायद यह बात तुम उमर के लिहाज से सोच रहे होगे?

के०—हाँ, कुछ-कुछ यही बात है। मेरी उमर ५० के करीब होगी, वे सिर्फ २० की हैं।

रु०—५० और (सोचते हैं।)

के०—और फिर एक ग्रेजुएट लड़की! जानते हो डॉक्टर, ये ग्रेजुएट्स क्या चाहती हैं? स्वतन्त्रता—आर्थिक स्वतन्त्रता— इकनामिक फ्रीडम—पति सिर्फ उनका साथी है—और पति का कर्तव्य क्या है? काम्पिटीशन मे बैठे, आइ. सी. एस. मे आवे!

रु०—(मुस्कराकर) घर में चार नौकर, मोटर और सैर सपाटे!

के०—बिल्कुल ठीक। इसी बात से तो पहले मैं झिझक रहा था।

रु०—झिझकने की क्या बात प्रोफेसर? लडकी का स्वभाव ही ऐसा होगा कि पढ़ने लिखने मे ज्यादा दिलचस्पी होगी। नहीं तो वे तुम्हे पसन्द ही क्यों करती?

के०—सचमुच ऐसा ही।

रु०—फिर जब उन्होंने तुमसे विवाह कर लिया तो क्या इससे यह साफ नहीं मालूम होता कि वे मामूली लडकी नहीं है? वे उमर के मुकाबले में तुम्हारे स्वभाव या तुम्हारी लियाकत की ज्यादा [illegible] करती है। वे गम्भीर स्वभाव की होंगी।

उनके भाई एक जज हैं।

रु०—ठीक है। तो ज्ञान और शील दोनों बातें उनमे है। लेकिन. ...

के०—लेकिन क्या ?

रु०—[सोचते हुए] कुछ नहीं ।

के०—नहीं जरूर कुछ है !

रु०—तुमने कभी उन्हे अकेले सोचते हुए देखा है ?

के०—वे कभी अकेली रहती ही नहीं।

रु०—क्या अकेले रहना नहीं चाहतीं ?

के०—जो भी हो, लेकिन वे हमेशा मेरे साथ ही रहती हैं। मेरे साथ ही हँसती-खेलती है। शादी होने के बाद वे कहीं गयी ही नहीं। दो तीन दिन के लिए सिर्फ अपने पिता के यहाँ गयी थी।

रु०—कभी तुमने उन्हे उदास देखा है ?

के०—एक बार जब प्रो० उदयनारायण के यहाँ पुत्रोत्सव से लौटी थीं तो कुछ दिन तक कहती रहीं कि मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। लेकिन यह सब कहने के बाद वे शायद सम्हल कर हँसने को कोशिश करती थीं।

रु०—बहुत सुन्दर केस है, केदार !

के०—मैं चाहता हूँ डॉक्टर कि तुम परीक्षा करके देख लो, चाहे जिस तरह। मुझे इतमीनान हो जायगा कि वे जो कुछ है, कहाँ तक हैं, कितनी गहरी है।

रु०—मैं तो समझता हूँ कि वे जितनी है, सच्ची है। यही हो सकता है कि आपके लिए प्रेम होने के बजाय उनके दिल में आदर ज्यादा हो। वे आपके लिए सब कुछ कर सकती है, सब कुछ दे सकती है।

के०—मैं भी ऐसा ही सोचता हूँ, लेकिन कभी-कभी उनके ४६६

के०—हाँ, मैंने सुना था कि तुम यन्त्र की सहायता से रोने की आवाज़ को हँसी मे बदल सकते हो !

रु०—(खड़े होकर घूमते हुए) इसमे विचित्रता क्या है ? मैंने हर एक स्वर के कम्पन का अध्ययन किया है। जैसे 'ई' है—संवृत् दीर्घ अग्र स्वर। इसके बोलने मे जीभ के आगे का हिस्सा उठ जाता है। लेकिन 'ऊ' है—संवृत् दीर्घ पश्च स्वर। इसके बोलने मे जीभ का पिछला भाग उठता है। मैंने रोने के इस 'ई' को हँसने के 'ऊ' मे बदलने मे सफलता पायी है।

के०—(हँसता हुआ) यह तो बडे मजे की बात है। फिर दुनिया मे कभी रोना सुन भी न पडेगा। दुनिया से रोना ही उठ जायगा।

रु०—लेकिन इससे क्या ? रोने की भावना का उठ जाना जरूरी है। शायद हँसी सुनते-सुनते रोना भूल जाय !

के०—तब तो संसार का तुम बडा उपकार करोगे, डॉक्टर !

रु०—उपकार तो तब होगा जब मेरा नया परीक्षण पूरा हो जायगा।

के०—कौन सा ?

रु०—मै एक ऐसा रस बनाने मे लगा हुआ हूँ जिसके पीने से बूढा आदमी भी जवान हो सकता है।

के०—(उछल कर) ऐ सचमुच ?

रु०—हाँ, बूढा भी जवान हो सकता है।

के०—तब तो क्या कहना ! मुझे दोगे डॉक्टर ?

रु०—ज़रूर। लेकिन......(सोचने लगता है।)

के०—लेकिन क्या ? सोचने लगे ?

रु०—कुछ नहीं। मेरे मन में यही बात उठी कि तुम्हारी इस खुशी मे क्या तुम्हारे बूढे होने की भावना नहीं पायी जाती ?

के०—(हँसकर) भला तुमसे मैं क्या छिपा सकता हूँ डॉ

के०—हाँ, वह भी। (सिर हिलाता है)

रु०—उसे क्यों भूल गये ?

के०—(कटते हुए) आँ, आँ, वह भी। उसे कैसे भूल सकता हूँ ? डॉ०, इन बातों को...तुम्हारी इन खोजो को सुनकर तो मेरी तबीयत और भी हो आयी है कि तुम मेरी पत्नी की मनोवैज्ञानिक परीक्षा करो।

रु०—लेकिन मेरा साहस नहीं होता ! एक अपरिचित और फिर स्त्री।

के०—मैं जो कहता हूँ। वह मेरी स्त्री है। तुम्हे जानती है। फिर तुम भी उसे जानने लगोगे।

रु०—फिर भी....

के०—अच्छा, एक बात सुनो। भीतर के कमरे मे चलो। मैं तुम्हे बतलाऊँ। (उठ खडे होते हैं)

रु०—भीतर चलूँ ?

के०—हाँ, भीतर एक बात कह दूँ। उससे तुम सब समझ सकोगे।

रु०—अच्छा, चलो। एँ, जरा ठहरो। (ज़ोर से) किशोर (किशोर का प्रवेश) देखो, वे दो-तीन चिट्ठियाँ टाइप करो। मैं अभी आता हूँ, समझे ?

(डॉ० रुद्र का प्रोफेसर केदार के साथ दायें दरवाजे से प्रस्थान किशोर टाइप करता है। परदे के पीछे सगीत होता है। दो-तीन मिनट के बाद डॉ० रु० का प्रो० केदार के साथ हँसते हुए प्रवेश।]

रु०—अच्छी बात है। फिर आप कितनी देर बाद लौटेंगे ?

के०—यही पाँच मिनट मे।

रु०—तो फिर भाई, मैं जिम्मेदार नहीं। तुम जानो।

के०—सब बाते मुझ पर छोड दो डाक्टर, कम से कम मुझे विश्वास तो हो जायगा।

रु०—उन्हें मेरे पास रखो ।

[किशोर टेबुल से दो कागज निकाल कर बोतलों के पास दूसरी टेबुल पर रखता है ।]

रु०—यह नोट पढ कर सुनाओ । [एक कागज किशोर के हाथ में देता है ।]

कि०—(लेते हुए) जी । [नोट पढकर सुनाता है ।] मूलाधार चक्र से आगे बढते हुए इडा नाडी पाँच बार मुडती है । तब वह आज्ञाचक्र के समीप पहुँचती है । रस का घनत्व इतना होना चाहिए कि वह नाडियों के तरल पदार्थ को प्रभावित कर मूलाधार चक्र मे कम से कम चौबीस सेकेण्ड मे अपनी संपूर्ण प्रक्रिया कर सके । उस रस के तत्त्व मे गन्धक...(बाहर आवाज होती है । रोशन का प्रवेश । वह अदब से एक कोने में खड़ा हो जाता है । डॉ० रु० रोशन की ओर जिज्ञासा-दृष्टि से देखते हैं ।)

रोशन—हुजूर, प्रोफेसर केदारनाथ साहब और एक बीबी जी आयी है ।

रु०—अच्छा, बाहर के कमरे मे । (किशोर से) पानी गरम होगया ?

कि०—जी, गुनगुना ।

रु०—ठीक, स्टोव बन्द कर दो । तुम बाहर जाओ । देखो 'साइंटिफिक अमेरिकन' अपने साथ लोगे और उसमें छपे हुए मेरे लेख का सक्षेप लिखोगे ।

कि०—वही 'दि डेफीनीशन अव् ए क्राई' ?

रु०—हाँ, वही । बाहर के कमरे मे बैठोगे और प्रोफेसर तथा उन की पत्नी को यहाँ भेजोगे ।

[किशोर स्टोव बद करता है, टेबुल पर से 'साइंटिफिक अमेरिकन' की प्रति उठाता है । प्रस्थान । डॉ० रुद्र काली बोतल उठाकर आलमारी में रखते हैं और एक दूसरी नीली बोतल निकालते हैं । फिर गंभीरता के साथ अभ्या-

र०—जी नहीं, धन्यवाद ।

के०—डॉ० रुद्र, आप से मिलने की अभिलाषा मे शायद इन्हे रास्ते की तकलीफ कोई तकलीफ नहीं मालूम हुई । और अभी जब मैंने इनसे आप से मिलने के बारे मे कहा तो ये ऐसे ही तैयार हो गयीं । इन्हे आप के दर्शन की बडी अभिलाषा थी ।

र०—जो आज सफल हुई ।

रु०—धन्यवाद । मुझे बहुत खुशी हुई आप से मिलकर । मै तो आपके प्रोफेसर केदार का साथी हूँ । हम दोनों साथ पढते थे । इन्होंने अंग्रेजी ली थी, मैंने भौतिक विज्ञान । ये कानून पढ़ते रहे, मैंने अपने ही आप दर्शन पढे । इसके बाद हम लोग अलग हुए । मै डी० एस्-सी कर दिल्ली आ गया, ये वहीं प्रोफेसर हो गए । अगर भौतिक विज्ञान के बजाय मैं दर्शन ही लेता तो शायद प्रोफेसर केदार के साथ होता ।

के०—मुझे तो खुशी होती ।

र०—लेकिन संसार का अपकार होता । भौतिक विज्ञान और दर्शन को मिला कर आपने खोजे की, उतनी कौन करता ? ऐसा वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक संसार मे कठिनाई से मिलेगा ।

रु०—आप तो बहुत अच्छी हिन्दी बोलतीं है ।

र०—हिन्दी मातृ-भाषा है न ? अपने देश की राष्ट्र-भाषा ।

रु०—हमारे देश को आप जैसी आदर्श देवियों की आवश्यकता है ।

र०—मुझे लज्जित न कीजिए । आप अपनी महानता से ऐसा कह रहे है इनकी (केदार की ओर सकेत कर) इच्छा थी कि रास्ते में दिल्ली रुक कर आपके पास ठहरे । मैं भी यही चाहती थी कि विश्व-विख्यात महापुरुष के सत्सग मे कुछ समय सार्थक करूँ किन्तु उत्साह नहीं हुआ । मैं नहीं जानती थी कि आप इतने महान् होकर इतने सरल हैं ।

रु०—(गम्भीर स्मिति के साथ) धन्यवाद ।

के०—क्यों ठीक नहीं ? मेरी उम्र ५० के लगभग है। काम अब भी बहुत करना है। कभी थकावट मालूम होती है। मुझ पर प्रयोग करोगे तो मेरा ही भला करोगे।

रु०—मुमकिन है अभी उसका पूरा असर न हो।

के०—तो उसमे क्या हानि है ? एक दम २५ वर्ष का न हुआ तो दस-पाँच बरस छोटा हो ही जाऊँगा।

रु०—[रहस्यपूर्ण मुस्कान से] श्रीमती रत्ना, आपकी क्या राय है।

र०—[सकोच से] मै क्या कहूँ ?

रु०—प्रोफेसर केदार, अभी रस तैयार नहीं हुआ। यह देखो, अभी टेबल पर ही रखा हुआ है [उठ कर बोतल उठा कर उसे हाथों से झुलाते हैं] जब बन जायगा तो सचमुच मेरा जीवन सफल हो जायगा।

र०—आप तो अमर हो जायँगे !

रु०—कौन जाने ? लेकिन अब अधिक जी कर क्या करूँगा ? जो कुछ थोडा-बहुत करना था कर ही चुका। और अब अकेला हूँ। मेरी स्त्री मेरा रास्ता देख रही होगी।

र०—आप ऐसी बाते न कहे। हृदय भर आता है। अभी आप न जाने क्या-क्या खोज करेगे !

के०—तब तक डॉ० रुद्र मै तो तुम्हारे प्रयोग से लाभ उठाऊँगा ही। और टेबुल पर यह रस देख कर तो मेरी और इच्छा हो गयी है। डॉक्टर, एक खुराक मुझे दे दो। रत्ना . .. [प्रश्न सूचक दृष्टि]

र०—[आकुलता से] अभी वह तैयार कहाँ हुआ है ? इस हालत मे वह कहीं हानि न पहुँचावे ?

के०—डॉ० रुद्र का रस और हानि पहुँचावे ? असभव, अब मैं अपनी तबीयत नहीं रोक सकता। तुम्हे देना ही होगा।

रु०—इतना आग्रह ?

के०—डॉक्टर, वे ठीक कह रही हैं। लेकिन मेरी खुशी में वे और खुश होंगी।

रु०—अच्छा, तो फिर रस तुम्हें दे दूँगा। इस कुर्सी पर बैठो।

(टेबुल के पास की कुर्सी की ओर सकेत करते है।)

के०—(अत्यानन्द से) ओ', धन्यवाद डॉक्टर! ओ' धन्यवाद! म कितने अच्छे हो डॉक्टर! (दूसरी कुर्सी पर बैठते है) तुम मेरे च्चे मित्र हो।

रु०—मैं कब न था? (रत्ना से) श्रीमती रत्ना, प्रोफेसर अब युवक जायेगे। बिलकुल नवीन...!

र०—डॉक्टर रुद्र, देखिए इन्हें नुकसान न होने पावे। मैं जानती कि आपके हाथ मे ये सुरक्षित है, फिर भी मुझे घबराहट मालूम ती है। देखिए डाक्टर, आपका प्रयोग ठीक हो!

रु०—कोशिश तो मेरी आपके हित में होगी, लेकिन रस के इस वस्था के विषय मे मै ठीक नहीं कह सकता।

के०—मै ठीक कह सकता हू। अपनी सूरत तुम खुद नहीं देख कते, मै देख सकता हूँ। रत्ना, तुम इतना घबराती क्यों हो?

रु०—मैं अजीब उलझन मे हूँ।

के०—वह उलझन अभी दूर होती है। क्यों डॉक्टर, जवान होने र मुझे आप पहचान सकेंगे?

रु०—(रत्ना से) आप प्रोफेसर केदार को पहचान सकेंगी?

(रत्ना चुप रहती है।)

के०—डॉक्टर, इनकी पहचान काफी तेज है! मै होली मे इनके कुत्ते को खूब रग देता हूँ, तब भी ये उसे पहचान लेती हैं। तो क्या मुझे न पहचान सकेंगी? (हास्य)

र०—(लज्जित होकर) क्या कहते हैं आप!

के०—अच्छा रत्ना, मालवीय जी का कायाकल्प तो ठीक नहीं

रु०—और देखो, जो रस मैं आपको दूँगा, उसे एक घूँट ही मे पी जाना होगा। उसे एक बारगी मूलाधारचक्र मे पहुँचना चाहिए। धीरे-धीरे पीने से नुकसान होने का अंदेशा है।

र०—(भराई आवाज मे) जल्द ही पी जाइएगा !

के०—बहुत जल्दी।

रु०—और साथ ही यह सोचना पड़ेगा—कहना पडेगा— कि मै ज्वान हो रहा हूँ ?

के०—ठीक है डॉक्टर, मै ऐसा ही कहूगा, ऐसा ही कहूँगा।

रु०—और देखिए, मै दवा निकालने जाऊँगा, वैसे ही अँधेरा हो जाना चाहिए। नहीं तो उजेला आँखो की राह होकर दवा के गुण को नष्ट कर देगा। इस नीली बोतल मे उजेले का प्रवेश नही है।

के०—ठीक, मालवीयजी ने भी कायाकल्प के प्रयोग अन्धेरी कोठरी मे किये थे।

रु०—(रत्ना से) अच्छा श्रीमती रत्ना, आप उस दूर की कुर्सी पर बैठ जावे। प्रोफेसर केदार, इस समय आप श्रीमती रत्ना की बात नही सोचेगे। सारी दुनियाँ को भूल कर खुद को देखेगे।

के०—ऐसा ही होगा।

(रत्ना दूर की कुर्सी पर जाकर बैठती है।)

रु०—तो अब मैं रस निकालता हूँ।

(डॉ० रुद्र बोतल हाथ मे लेते हैं। स्टेज का सारा प्रकाश बुझा दिया जाता है। केवल बोतल और गिलास के उठाने और रखने की आवाज आती है। गिलास मे तरल पदार्थ का 'छल-छल' शब्द होता।]

रु०—प्रोफेसर, यह मैने गिलास में रस डाल दिया।

के०—लाइए। (केदार रस पी जाते हैं) डॉक्टर, मैंने यह रस पी लिया, मैने सिर का कपड़ा भी खोल लिया।

रु०—अब जवान होने की भावना सोचिए।

के०—डॉक्टर, इन्होंने मेरी यह हालत जो देख ली।

रु०—[रत्ना को पुकारते हैं।] श्रीमती रत्ना ! श्रीमती रत्ना !!
[हवा करते है। रत्ना होश में आती है।]

र०—[होश मे आकर परिस्थिति की स्मृति आने पर] ओह, यह क्या हो गया !
[कुर्सी पर अत्यन्त शिथिल। फिर शीघ्रता से केदार के पास आकर जमीन पर बैठ जाती है।]

रु०—[ढाढ़स देते हुए] श्रीमती रत्ना, आप अपना हृदय मजबूत करें।

र०—ओह, ये कैसे हो गये !

रु०—मै कहता था कि अभी रस तैयार नही है। सहस्रदल से अमृत उठने के बजाय मूलाधार का विष सारे शरीर मे फैल गया ! उसी से बुढापा आ गया।

र०—आह [अत्यन्त दुःख की मुद्रा।]

रु०—श्रीमती, मुझे माफ करे। मेरे ही रस से यह सब कुछ हुआ ! लेकिन इसमें मेरा कसूर बहुत थोडा है। प्रोफेसर केदार ने ही इतना जोर दिया। [केदार के समीप कुर्सी रखते हुए] उठिए, कुर्सी पर बैठ जाइए।

र०—ओह, यह क्या हो गया ! [कुर्सी पर बैठना अस्वीकार करती है।]

के०—[खाँसता हुआ] डॉक्टर, मै समझता था कि तुम्हारे रस से फायदा ही होगा। [खाँसी आती है।] ओह, मेरे हाथ-पैर कितने कमजोर मालूम हो रहे हैं, रत्ना !

र०—[प्रार्थना के स्वर में] डाक्टर, अब मै क्या करूँ ? क्या आप के रसायन मे कोई ऐसी चीज नहीं जो इन्हे पहले जैसी अवस्था में ला दे ?

की कमाई दे सकती हूँ। (हाथ जोड़ कर झुक जाती है।) जीवन भर उपकार न भूलूँगी।

रु०—(संतोष देने के स्वर में) श्रीमती रत्ना, आप दुखी न हों। मै अपने सारे काम छोड कर इसी पर खोज करूँगा और जल्दी से जल्दी इस रस की सिद्धि करूँगा। प्रोफेसर केदार, तब तक आप मुझे माफ करें।

के०—(रत्ना से) रत्ना, अब मै काश्मीर नही चल सकता ! चलने फिरने की ताकत भी नहीं मालूम देती। अब मुझे घर ले चलो ?

र०—(आह भर कर) आह डॉ० रुद्र, इन्हे अच्छा कर दो !

रु०—श्रीमती रत्ना, यह समय वहुत कठिन है।

र०—ओह ! यह क्या हो गया ! (सिर पकड़ कर झुक जाती है।)

रु०—लेकिन, एक तरह से मै इस कठिनाई को हल कर सकता हूँ।

र०—(उमग से उठकर) कैसे ? डॉक्टर कैसे ? जल्द बतलाइए ?

रु०—मैं देख रहा हूँ, प्रोफेसर केदार से अधिक आपकी हालत खराब है। आप इतनी दुखी है तो केदार आप को देखकर और भी दुखित होगे। मैं एक काम कर सकता हूँ।

र०—वह क्या ? (उत्सुकता की दृष्टि)

रु०—मनोविज्ञान के अनुसार यह परिस्थिति केवल एक बात से हट सकती है वह यह कि आप भी बूढी बन जायँ। (रत्ना गम्भीर हो जाती है।) उस वक्त न प्रोफेसर केदार को तकलीफ होगी न आपको ! फिर रस तैयार होने पर मैं आप दोनों को अच्छा कर लूँगा।

र०—(गम्भीरता से धीरे-धीरे) मैं भी बूढी बन जाऊँ ? (उसी कुर्सी पर वैठ जाती है।)

रु०—हाँ, आपको कोई कष्ट न होगा।

र०—डॉक्टर, क्या मेरे बूढे होने से प्रोफेसर साहब को [illegible] मिलेगी ?

की कमाई दे सकती हूँ। (हाथ जोड कर झुक जाती है।) जीवन भर उपकार न भूलूँगी।

रु०—(सतोष देने के स्वर में) श्रीमती रत्ना, आप दुखी न हों। मैं अपने सारे काम छोड़ कर इसी पर खोज करूँगा और जल्दी से जल्दी इस रस की सिद्धि करूँगा। प्रोफेसर केदार, तब तक आप मुझे माफ करें।

के०—(रत्ना से) रत्ना, अब मै काश्मीर नही चल सकता ! चलने फिरने की ताकत भी नहीं मालूम देती। अब मुझे घर ले चलो ?

र०—(आह भर कर) आह डॉ० रुद्र, इन्हे अच्छा कर दो !

रु०—श्रीमती रत्ना, यह समय बहुत कठिन है।

र०—ओह ! यह क्या हो गया ! (सिर पकड़ कर झुक जाती है।)

रु०—लेकिन, एक तरह से मै इस कठिनाई को हल कर सकता हूँ।

र०—(उमग से उठकर) कैसे ? डॉक्टर कैसे ? जल्द बतलाइए ?

रु०—मै देख रहा हूँ, प्रोफेसर केदार से अधिक आपकी हालत खराब है। आप इतनी दुखी है तो केदार आप को देखकर और भी दुखित होंगे। मैं एक काम कर सकता हूँ।

र०—वह क्या ? (उत्सुकता की दृष्टि)

रु०—मनोविज्ञान के अनुसार यह परिस्थिति केवल एक बात से हट सकती है वह यह कि आप भी बूढी बन जायँ। (रत्ना गम्भीर हो जाती है।) उस वक्त न प्रोफेसर केदार को तकलीफ होगी न आपको ! फिर रस तैयार होने पर मैं आप दोनों को अच्छा कर लूँगा।

र०—(गम्भीरता से धीरे-धीरे) मैं भी बूढी बन जाऊँ ? (उसी कुर्सी पर बैठ जाती है।)

रु०—हाँ, आपको कोई कष्ट न होगा।

र०—डॉक्टर, क्या मेरे बूढे होने से प्रोफेसर साहब को शान्ति मिलेगी ?

के०—(एक साथ ही) ठहरो, मैं ऐसा नहीं होने दूंगा।

र०—नहीं, ऐसा होगा। मैं इस समय आपका निषेध न मानूंगी।

के०—(धीरे धीरे) मैं नहीं चाहता रत्ना, कि तुम...तुम अपनी जिन्दगी बर्बाद करो। मैं तो मौत के करीब-करीब पहुँच गया। मेरे पीछे तुम क्यों अपनी दुनिया खराब करती हो ?

र०—मेरी दुनिया अब रही कहाँ ? आपकी इस दशा में मुझे यही करना चाहिए।

के०—रत्ना, यह रस तुम मत पियो।

र०—मुझे पीने दीजिए।

के०—यदि मैं यह रस तुम्हे न पीने दूं ?

र०—ऐसी दशा में कदाचित् मुझे आत्म-हत्या करनी पड़े।

के०—ओह रत्ना ! रत्ना ! डॉ० रुद्र ! (उद्विग्न होते हैं)

रु०—प्रोफेसर, अगर श्रीमती रत्ना की इच्छा होगी तो वह रस वे पी सकती है।

र०—हाँ डॉक्टर, मैं पीना चाहती हूँ।

रु०—ठीक है। मैं अपना रस दूँगा। आप को अपने सिर पर इस कपड़ा न बाँधना होगा। आप लोगों के मस्तिष्क की बनावट कपड़े की आवश्यकता नहीं रखती। केवल एक घूँट में रस पी जाना होगा।

र०—मैं एक ही घूँट में पी लूँगी।

रु०—केवल अँधेरा करना होगा। आप के कुछ सोचने और करने की आवश्यकता नहीं है। बुढ़ापे के लिए कुछ सोचने की आवश्यकता नहीं होती। वह आप से आप आ जाता है। सिर्फ आँखें बन्द कर लीजिएगा।

र०—दीजिए वह रस मुझे।

रु०—अच्छी बात है।

र०—ओह डॉक्टर आप क्या हैं, कुछ समझ में नहीं आता! (रत्ना हँसते-हँसते काउच पर बैठ जाती है। प्रोफेसर केदार मुस्कराते हैं।)

रु०—(अत्यन्त शिष्टता के साथ) श्रीमती रत्ना, मैं सब से पहले आप से क्षमा माँगता हूँ।

र०—कैसी क्षमा? (केदार से) देखिए, ये क्षमा क्यों माँगते हैं?

के०—जो जितना बड़ा होता है, वह उतना ही नम्र होता है।

रु०—देवीजी, आप कितनी महान् है। आप की प्रशंसा मुझसे किसी प्रकार हो ही नहीं सकती। आप के दर्शन कर मै धन्य हुआ।

के०—मैं धन्य हुआ डॉक्टर! ओफ, रत्ना भारत की रत्ना है।

र०—यह आप दोनों क्या कह रहे है?

रु०—देवीजी, यह मेरा केवल एक परीक्षण था। न कोई बूढ़ा हुआ न जवान। थोड़ा-सा मनोविनोद होता किन्तु उससे आप को कष्ट हुआ। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

र०—(गंभीर होकर) मैं कुछ समझी नही डॉक्टर!

रु०—मैं केवल नारी का मनोविज्ञान जानना चाहता था और इस के लिए मैंने आप के पति-देव प्रोफेसर केदारनाथ जी से आज्ञा ले ली थी। इन्होंने स्वयं इस प्रयोग मे दिलचस्पी ली। इन्होंने स्वयं एकान्त मे इस प्रयोग की रूप-रेखा खींची थी। मैंने 'अमर-यौवन' का रस तो आलमारी मे बन्द कर दिया। केवल शर्बत आप लोगो ने पिया।

र०—(गंभीर होकर) अच्छा, तो आप लोगों ने मेरी परीक्षा ली।

रु०—जिससे आप का गौरव बढ़ा।

के०—मुझे सुख और संतोष मिला।

र०—डॉ० रुद्र, प्रशंसा के लिए धन्यवाद, किन्तु इससे मुझे प्रसन्नता नहीं हुई।

रु०—इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

—(हाथ जोड़ते हुए) मैं भी......(उठ खड़े होते हैं

र०—ओह डॉक्टर आप क्या हैं, कुछ समझ में नहीं आता! (रत्ना हँसते-हँसते काउच पर बैठ जाती है। प्रोफेसर केदार मुस्कराते हैं।)

रु०—(अत्यन्त शिष्टता के साथ) श्रीमती रत्ना, मैं सब से पहले आप से क्षमा माँगता हूँ।

र०—कैसी क्षमा? (केदार से) देखिए, ये क्षमा क्यों माँगते है?

के०—जो जितना बडा होता है, वह उतना ही नम्र होता है।

रु०—देवीजी, आप कितनी महान् है। आप की प्रशंसा मुझसे किसी प्रकार हो ही नहीं सकती। आप के दर्शन कर मैं धन्य हुआ।

के०—मैं धन्य हुआ डॉक्टर! ओफ, रत्ना भारत की रत्ना है।

र०—यह आप दोनों क्या कह रहे है?

रु०—देवीजी, यह मेरा केवल एक परीक्षण था। न कोई बूढा हुआ न जवान। थोडा-सा मनोविनोद होता किन्तु उससे आप को कष्ट हुआ। इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

र०—(गभीर होकर) मैं कुछ समझी नही डॉक्टर!

रु०—मैं केवल नारी का मनोविज्ञान जानना चाहता था और इस के लिए मैंने आप के पति-देव प्रोफेसर केदारनाथ जी से आज्ञा ले ली थी। इन्होंने स्वयं इस प्रयोग में दिलचस्पी ली। इन्होंने स्वयं एकान्त मे इस प्रयोग की रूप-रेखा खीचीं थी। मैंने 'अमर-यौवन' का रस तो आलमारी मे बन्द कर दिया। केवल शर्बत आप लोगों ने पिया।

र०—(गंभीर होकर) अच्छा, तो आप लोगों ने मेरी परीक्षा ली।

रु०—जिससे आप का गौरव बढ़ा।

के०—मुझे सुख और संतोष मिला।

र०—डॉ० रुद्र, प्रशंसा के लिए धन्यवाद, किन्तु इससे मुझे प्रसन्नता नहीं हुई।

रु०—इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

के०—(हाथ जोड़ते हुए) मैं भी......(उठ खडे होते हैं।)

रु०—कोई शंकाएँ नहीं। आप तो देवी है। आपको कष्ट पहुँचाने की ज़िम्मेदारी मुझ पर है। मैं जुरमाना दूँगा। आज शाम को मैं एक बच्चे के रोने की आवाज हँसी में बदल कर आपका मनोरञ्जन करूँगा।

र०—सचमुच! अनेक धन्यवाद। लेकिन हम लोग तो आज जा रहे है।

रु०—लेकिन मेरे अनुरोध से आप को रुकना होगा। क्यों प्रोफे-सर केदार?

के०—रत्ना, जब डॉ० रुद्र इतना आग्रह कर रहे है तो आज रुक जाने मे क्या हानि है? एक दिन की देर और सही।

र०—अच्छी बात है, लेकिन एक शर्त पर। आप हम लोगो की जवानी और बुढापे की बात किसी से न कहे। (हास्य)

रु०—कभी नहीं। कभी नहीं। कोई जवान और बूढा हुआ कहाँ?

(अट्टहास, परदा गिरता है)

रात्रि की नीलिमा और भी सघन हो गई है, चन्द्रमा के ऊपर से एक हल्का धौल-साँवला अभ्र-खण्ड भागता चला जा रहा है, बहुत दूर पर एक कोई पक्षी न जाने क्यों रह-रह कर बोल रहा है, और तभी हवा के झोंके मे वातायन का नीलाशुक फड़फड़ा उठता है और साथ ही निर्झरिणी आकाश के अनन्त के प्रसार में न जाने कहाँ-कहाँ विचरण कर अपने आप में लौट सी आती है।)

नि०—समझा तूने मञ्जरी ?

म०—(एकाएक निस्तब्धता भग होने से कुछ विस्मित सी होकर) क्या ?

नि०—आर्यावर्त्त के एकातपत्र सम्राट् आर्य समुद्रगुप्त .....

म०—हाँ।

नि०—लक्ष्मी और सरस्वती के वरदानों का संगम उनकी राजसभा...... ..

म०—सही।

नि०—और उसकी प्रधान नर्तकी के रूप में उसका एक रत्न निर्वाचित की जाने वाली हूँ मैं—निर्झरिणी !

म०—तेरा अहोभाग्य तेरे पूर्व-जन्म के पुण्यों का उदय, जो तू सम्राट् समुद्रगुप्त की राज-सभा का एक रत्न बन कर......

नि०—रत्न मैं .. ..मैं रत्न......पर मजरी, यह रत्न होता क्या है ?

म०—प्रकृति की कलापूर्ण उँगलियों से सँवारे जा कर पत्थर के जिस टुकडे मे सौंदर्य का सागर सिमट कर जा बैठता है उसी को कहते है रत्न।

नि०—सौंदर्य का सागर पर सौंदर्य की भी कोई परिभाषा है ?

म०—सौंदर्य वही जो बहुमूल्य हो।

नि०—पर पृथ्वी के गर्भ और सागर के तले की जिस • .

रात्रि की नीलिमा और भी सघन हो गई है, चन्द्रमा के ऊपर से एक हल्का धौल-साँवला अभ्र-खड भागता चला जा रहा है, बहुत दूर पर एक कोई पक्षी न जाने क्यो रह-रह कर बोल रहा है, और तभी हवा के झोंके से वातायन का नीलाशुक फडफडा उठता है और साथ ही निर्झरिणी आकाश के अनन्त के प्रसार मे न जाने कहाँ-कहाँ विचरण कर अपने आप में लौट सी आती है।)

नि०—समझा तूने मञ्जरी ?

म०—(एकाएक निस्तब्धता भग होने से कुछ विस्मित सी होकर) क्या ?

नि०—आर्यावर्त्त के एकातपत्र सम्राट् आर्य समुद्रगुप्त . ...

म०—हाँ।

नि०—लक्ष्मी और सरस्वती के वरदानों का संगम उनकी राजसभा....... .

म०—सही।

नि०—और उसकी प्रधान नर्तकी के रूप मे उसका एक रत्न निर्वाचित की जाने वाली हूँ मैं—निर्झरिणी !

म०—तेरा अहोभाग्य तेरे पूर्व-जन्म के पुण्यो का उदय, जो तू सम्राट् समुद्रगुप्त की राज-सभा का एक रत्न बन कर......

नि०—रत्न मैं .... मैं रत्न .....पर मंजरी, यह रत्न होता क्या है ?

म०—प्रकृति की कलापूर्ण उँगलियों से सँवारे जा कर पत्थर के जिस टुकडे में सौंदर्य का सागर सिमट कर जा बैठता है उसी को कहते है रत्न।

नि०—सौंदर्य का सागर.. पर सौंदर्य की भी कोई परिभाषा है ?

म०—सौंदर्य वही जो बहुमूल्य हो।

नि०—पर पृथ्वी के गर्भ और सागर के तले की जिस गहराई तक

रात्रि की नीलिमा और भी सघन हो गई है, चन्द्रमा के ऊपर से एक हल्का धौल-साँवला अभ्र-खंड भागता चला जा रहा है, बहुत दूर पर एक कोई पक्षी न जाने क्यों रह-रह कर बोल रहा है, और तभी हवा के झोंके से वातायन का नीलाशुक फड़फड़ा उठता है और साथ ही निर्झरिणी आकाश के अनन्त के प्रसार मे न जाने कहाँ-कहाँ विचरण कर अपने आप में लौट सी आती है।)

नि०—समझा तूने मञ्जरी ?

म०—(एकाएक निस्तब्धता भग होने से कुछ विस्मित सी होकर) क्या ?

नि०—आर्यावर्त्त के एकातपत्र सम्राट् आर्य समुद्रगुप्त.. ...

म०—हाँ।

नि०—लक्ष्मी और सरस्वती के वरदानो का संगम उनकी राजसभा..... ..

म०—सही।

नि०—और उसकी प्रधान नर्तकी के रूप मे उसका एक रत्न निर्वाचित की जाने वाली हूँ मैं—निर्झरिणी !

म०—तेरा अहोभाग्य तेरे पूर्व-जन्म के पुण्यों का उदय, जो तू सम्राट् समुद्रगुप्त की राज-सभा का एक रत्न बन कर.....

नि०—रत्न मै ....मैं रत्न.....पर मंजरी, यह रत्न होता क्या है ?

म०—प्रकृति की कलापूर्ण उँगलियों से सँवारे जा कर पत्थर के जिस टुकडे मे सौंदर्य का सागर सिमट कर जा बैठता है उसी को कहते है रत्न।

नि०—सौंदर्य का सागर . पर सौंदर्य की भी कोई परिभाषा है ?

म०—सौंदर्य वही जो बहुमूल्य हो।

नि०—पर पृथ्वी के गर्भ और सागर के तले की जिस गहराई तक

म०—सामन्त चन्द्रसेन !

नि०—अस्तित्व के तकाजे से भी बडा एक तकाजा होता है सामन्त चंद्रसेन, और वह होता है जीवन का। प्रत्येक जीवन अस्तित्व है, पर प्रत्येक अस्तित्व जीवन नहीं। अत अस्तित्व का तकाजा चाहे कठोर कितना भी हो, पर उतना मर्मस्पर्शी नहीं होता जितना जीवन का और जीवन का तकाजा क्या है, तुम्हे मालूम है ?

चन्द्रसेन—पर मै पूछता हूँ, तुम जीवन को अस्तित्व से पृथक करके क्यों देखती हो ?

नि०—इसलिए कि प्राय. अस्तित्व का तकाजा जीवन के बलिदान की माँग बन कर आता है। अस्तित्व के झाड-झखाड मे जीवन फूल बन कर उगता है, पर वह उगता है इसलिए नहीं कि अपना पराग बेच-बेचकर उस झाड-झखाड को वह अपनी सार्थकता का हिसाब देता रहे, किंतु इसलिए कि अपने उस पराग को दिशाओं मे लुटा कर वह विश्व की निधि बन सके। अस्तित्व और जीवन यहीं पृथक होते हैं सामन्त !

च०—पर तुम यह क्यों भूल रही हो निर्झरिणी, कि जीवन के फूल को उसका प्राण-रस अस्तित्व का झाड-झखाड ही पहुँचाता है। उस फूल का पराग उस के मूल की सबलता पर ही.. ..।

नि०—निर्भर है सच है। पर प्रश्न यह है कि फूल के ऊपर मूल का ऋण क्या इतना बडा है कि फूल का सारा यौवन मूल की मुट्ठी मे गिरवी बन कर पडा रहे ?

च०—प्रकृति ने फूल को आकाश में खिला कर और मूल पृथ्वी मे गाड कर यह एक अपरिवर्तनीय नियम बना दिया है कि... ..

नि०—कि आकाश पर शासन पृथ्वी का ही रहे। प्रकृति का ऐसा अपरिवर्तनीय नियम ? असभव !

च०—जिसे तुम अपने वीणा-विनिन्दित कंठ के समस्त तारों की

चुकाने के लिए अपने सौंदर्य के कलश मे कला की मदिरा लेकर उसे बेचने के लिए लक्ष-लक्ष आँखों के सामने खड़ी होना ही पड़ेगा। मुझे रत्न बना कर आज संसार मुझे खरीदना चाहता है और मुझ मे... मजरी, तुम धैर्य रखो...जीवन की इतनी परिपूर्णता नहीं है कि संसार के आँके हुए मूल्य का अपमान कर मै अपने आप को बिकने से रोक सकूँ। मेरी अपनी ही आँखों में मैं और मेरा सब कुछ तभी तक महान है जब तक संसार उसे महान समझता है . और तुम प्रसन्न हो मजरी, कि ससार मेरी इस लघुता को ही मेरा मूल्य बना कर मुझे खरीदने जा रहा है।

म०—पर तू यह सब कह क्या रही है? मेरी तो कुछ समझ मे ही नहीं आता।

नि०—फिर भी मैं कहती हूँ सामन्त चन्द्रसेन, एक बात तुम न भूलना। जिसे तुम प्रकृति का अपरिवर्तनीय नियम कहते हो, वह सचमुच इतना अपरिवर्तनीय नहीं है, जितना तुम्हारी धारणा है। मै भले ही उसका परिवर्तन न कर सकूँ पर, मै ऐसी शक्ति की कल्पना कर सकती हूँ जो . जो.. जो .

च०—रुक क्यों गई?

नि०—यही कहने के लिए सामन्त, कि भारत-सम्राट ने यह सम्मान प्रदान कर मेरे ऊपर जो कृपा की है; मैं उसके लिए कृतज्ञ हूँ और .

म०—और?

नि०—और उसे मैं सविनय शिरोधार्य करती हूँ। सम्राट की और क्या आज्ञा है?

च०—पूर्णिमा को राजसभा मे उपस्थित हो तुम्हे सम्राट का उपहार ग्रहण करना होगा और उसी रात्रि को राजसभा मे तुम्हारी कला का प्रथम प्रदर्शन होगा।

चुराने के लिए अपने सौंदर्य के कलश में कला की मदिरा लेकर उसे बेचने के लिए लक्ष-लक्ष आँखों के सामने खड़ी होना ही पड़ेगा। मुझे रत्न बना कर आज संसार मुझे खरीदना चाहता है और मुझ मे... मजरी, तुम धैर्य रखो...जीवन की इतनी परिपूर्णता नहीं है कि ससार के आँके हुए मूल्य का अपमान कर मैं अपने आप को बिकने से रोक सकूँ। मेरी अपनी ही आँखों में मैं और मेरा सब कुछ तभी तक महान है जब तक संसार उसे महान समझता है .और तुम प्रसन्न हो मजरी, कि ससार मेरी इस लघुता को ही मेरा मूल्य बना कर मुझे खरीदने जा रहा है।

म०—पर तू यह सब कह क्या रही है? मेरी तो कुछ समझ मे ही नहीं आता।

नि०—फिर भी मै कहती हूँ सामन्त चन्द्रसेन, एक बात तुम न भूलना। जिसे तुम प्रकृति का अपरिवर्तनीय नियम कहते हो, वह सचमुच इतना अपरिवर्तनीय नहीं है, जितना तुम्हारी धारणा है। मै भले ही उसका परिवर्तन न कर सकूँ पर, मैं ऐसी शक्ति की कल्पना कर सकती हूँ जो...जो...जो ..

च०—रुक क्यों गई?

नि०—यही कहने के लिए सामन्त, कि भारत-सम्राट ने यह सम्मान प्रदान कर मेरे ऊपर जो कृपा की है, मै उसके लिए कृतज्ञ हूँ और ..

म०—और?

नि०—और उसे मैं सविनय शिरोधार्य करती हूँ। सम्राट की और क्या आज्ञा है?

च०—पूर्णिमा को राजसभा मे उपस्थित हो तुम्हे सम्राट का उपहार ग्रहण करना होगा और उसी रात्रि को राजसभा मे तुम्हारी कला का प्रथम प्रदर्शन होगा।

शशांक—(मृग-शावक के मुख में से अपना उत्तरीय छुड़ाते हुए) जलधर, इस वीणा के पतले तारों पर चढ़ कर आये हुए मेरी कला के संदेश को तुमने आज सुना ?

जलधर—जिस समय मेरे हाथों में मृदंग होता है शशांक, उस समय मैं केवल एक ही चीज सुनता हूँ और वह

शशांक—वह वीणा नहीं होती और शायद इसीलिए तुम अभी नहीं समझ रहे आज मैं एक कितनी महान अनुभूति से टकरा गया हूँ। जलधर मेरी कला ने मुझे आज समझा दिया है कि पृथ्वी पर कलाकार ईश्वर का रचनात्मक प्रतिनिधि है और... ..

जलधर—और शायद यह कि तुम भी उन्हीं कलाकारों में से एक हो...ठहरो .मैं देखू तुम्हे ज्वर तो नहीं हो रहा है... (नाड़ी देखना चाहता है)

शशांक—(हाथ छुड़ाकर) मैं कलाकार हूँ या नहीं प्रश्न इसका नहीं है। प्रश्न यह है कि कलाकार है क्या और आज मुझे ध्रुव विश्वास हो आया है कि ईश्वर के निर्माण किये हुए विश्व का जो पुनर्निर्माण कर सके वही कलाकार है। कला की साधना ईश्वरत्व की चरम आराधना है।

जलधर—तब तो मंदिर में बैठकर पत्थर पूजने वाले को ही सर्वश्रेष्ठ कलाकार मानना होगा क्यों कि—

शशांक—कदापि नहीं। ईश्वर ने मनुष्य की रचना की है और उत्तर में मनुष्य ने रचना की है ईश्वर के एक प्रतिद्वन्द्वी की; जो मंदिरों और देवालयों मे बैठकर नैवेद्य ग्रहण करता है और राज-सिंहासन पर बैठकर राजस्व। संसार के सारे देवी-देवता, या राजे-महाराजे ईश्वर के उसी एक प्रतिद्वन्द्वी के भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं और उनके चरणों पर चढ़ाई हुई सारी भेंट मनुष्य की अपनी उपहासास्पद दुर्बलता का ही लज्जा-जनक मूल्य है। जलधर सच पूछो तो ईश्वर के इस

च०—भूल करने के लिए मैं ने भारत के महान गायक आचार्य शशांक को कष्ट नहीं दिया है। मैं जो कह रहा हूँ उसका अनुमोदन सम्राट का आज्ञा-पत्र स्वयं करेगा (आज्ञापत्र निकालते हैं)।

श०—(रोक कर) मैं समझ गया। सम्राट ने मेरी गायन कला से प्रसन्न हो शायद मुझे यह अवसर-प्रदान करने की कृपा की है कि मैं अपनी कला से उन्हें और उनके पार्श्ववर्तियों को और भी प्रसन्न कर सकूँ, यही तो ?

च०—दूसरे शब्दों मे यों भी कहा जा सकता है कि आप आज से राज-सभा के प्रधान गायक नियुक्त हुए हैं। आज से राजकीय साहाय्य, संरक्षण और सम्मान के आप अधिकारी होंगे। आज रात्रि को राज-सभा मे आप की कला के प्रदर्शन का आयोजन होगा और वहीं सम्राट अपने हाथों आपको रत्न निर्वाचित होने का सम्मानपत्र... ..

श०—सामन्त, क्या मैं यह समझने की धृष्टता कर सकता हूँ कि मुझे अपनी राजसभा का रत्न निर्वाचित करने में सम्राट का अभिप्राय मेरी कला को और साथ ही मुझे भी सम्मानित करने का है ?

च०—इस मे भी कोई सदेह हो सकता है ?

श०—तब आप सम्राट को मेरी ओर से धन्यवाद देते हुए उनसे कृपया यह कह देंगे कि अपने जीवन में सम्राट की राजसभा का रत्न बनने से बढकर दूसरा अपमान शशांक कोई नहीं मानता।

च०—यह यह मैं क्या सुन रहा हूँ ?

श०—आप जो सुन रहे हैं उसके तीन कारण हैं पहला यह कि कला की साधना मेरे लिए तपस्या है और उसका प्रदर्शन किसी के मनोविनोद के लिए नहीं किया जा सकता, दूसरा यह कि सम्राट की राजसभा तक मेरी कला चलकर पहुँचे उससे अधिक आसान मैं यह समझता हूँ कि राजसभा ही उठकर मेरी कला के पास आवे और [illegible]रा यह कि, सामन्त आप क्षमा करेंगे, मेरी दृष्टि में रत्न और वे०

शशांक—मैं ऐसे किसी शासन का कायल नहीं, जिसकी भुजाएँ लोहे की और जिह्वा अग्नि की हो।

च०—तो फिर····

शशांक—अपने सम्राट की आज्ञा आपने मुझे सुना दी, अपनी आत्मा की आज्ञा मैंने आपको।

च०—किन्तु, यह राजाज्ञा का अपमान भी है और शासन के प्रति विद्रोह भी।

शशांक—जिस सुन्दरता से आप अपराधों का नामकरण कर सकते है, यदि उतनी ही सुन्दरता से मै वे अपराध कर सकता तो मैं अपने को कलाकार समझता। पर मेरा तो अपराध केवल एक ही है और वह है बिना कोई अपराध किये राजसभा मे न जाने का सत्याग्रह।

च०—सत्याग्रह और दुराग्रह की सीमान्त-रेखा बहुत ही सूक्ष्म होती है आचार्य!

शशांक—पर रेखा उसी को कहते भी हैं जिसकी चौड़ाई केवल कल्पनागम्य हो।

चं०—फिर भी आपका सत्याग्रह मुझे दुराग्रह लगे, इसे आप असंभव तो नही मानते?

शशांक—राजाज्ञा को पालन कराने का व्यवसाय करने वाला सत्याग्रह को समझ सके इसके अतिरिक्त मैं और कुछ भी असंभव नहीं मानता।

च०—तो फिर मेरे कर्त्तव्य का अनुरोध है, क्षमा करें, कि मै आपको बंदी बना लूँ।

शशांक— यदि आप कर्त्तव्य का कोई अस्तित्व मानते हैं, तो उसके अनुरोध का आप सहर्ष पालन करें।

जलधर—पर जब तक मैं [illegible] हूँ तब तक...

कर और भी प्रखर हो उठा है और उसी आलोक-वर्षा में राशि-राशि हीरक-कणों से आच्छादित ओस के बूँदों से भीगी हुई सुकुमार लता वेलि की तरह खड़ी है नर्तकी निर्झरिणी। वीणा का मधुर-संगीत, मृदंग का जलद-गम्भीर-निर्घोष और उस में नर्तकी के पायलों की झीनी रुनझुन, जान पड़ता है स्वर की त्रिवेणी लहरा आई है। इतने में ही मानों एकाएक बिजली चौंध गई, नर्तकी के पावों में मानों उनचास पवनों का वेग भर गया, मंडप में एक सौंदर्यशिखा तडिद्वेग से घूम गई और मालूम नहीं कितनी देर तक राजसभा मन्त्र-विमुग्ध सी निर्निमेष बैठी रही पर जब वह सचेत हुई तो देखा नर्तकी निर्झरिणी नतमस्तक हाथ जोड़े खड़ी है—नृत्य समाप्त होगया है। सभा में करतल-ध्वनि होती है और सम्राट अपने गले से मौक्तिक-माल निकाल कर निर्झरिणी की ओर बढ़ाते हैं। सामन्त चन्द्रसेन का प्रवेश)

स०—(हार उसे देते हुए) नर्तकी निर्झरिणी, तुम भारत की नृत्य-कला की सजीव प्रतिमा हो और मुझे गर्व है कि आज अपनी राज-सभा के रत्न के रूप मे मैं तुम्हारा सन्मान कर रहा हूँ—बधाई! (निर्झरिणी हार लेकर सम्राट का अभिवादन करती है)

च०—(सम्राट को अभिवादन करते हुए) सम्राट !

स०—मित्रो, अभी तक आपने नाचती हुई बिजली का चमकना देखा, अब अमृत बरसाने वाले मेघ का गरजना सुनिए। सामंत चन्द्रसेन, हम लोग आचार्य शशांक की प्रतीक्षा ही कर रहे थे, उन्हें राज-सभा में सादर ले आओ।

च०—पर सम्राट ?...

स०—क्यों ?

चं०—आचार्य शशांक ने राज-सभा का रत्न बनना अस्वीकार कर दिया। (निर्झरिणी चौंक उठती है)

स०—अस्वीकार ?

च०—हाँ सम्राट !

श०—भारत-सम्राट् आर्य समुद्रगुप्त से।

स०—और यह भी कि भारत-सम्राट की राजसभा मे आमन्त्रित होने का गर्व प्राप्त करने का अवसर प्रदान कर आपको और आपकी कला को कितना महत्त्व दिया गया था ?

श०—मैं मानता हूँ कि मुझे अवसर दिया गया था कि मैं अपने आप को बेच सकूँ।

स०—संगीतकला के प्रदर्शन को क्या बिकना कहते हैं ?

श०—हाँ, यदि वह प्रदर्शन हार्दिक शांति के लिए न होकर केवल मनोविनोद के लिए हो।

स०—शांति ! पर आपके जिस गले से शांति की यह स्रोतस्विनी बहती है, मेरी भृकुटि के एक हल्के संकेत से उसकी क्या अवस्था हो सकती है आप जानते है ?

शं०—यदि ईश्वर मिट्टी को छूकर सोना बना देने की शक्ति रखते हैं, तो सम्राट् भी सोना को छूकर मिट्टी बना देने की शक्ति रखते है, यह मैं जानता हूँ।

स०—आचार्य शशांक, जिसे मैंने अपनी राजसभा का रत्न बनाना चाहा था उसे धूल मे मसल देने के लिए बाध्य होने पर, सच मानिए, मुझे खेद होगा।

श०—आपकी सचाई पर मुझे उतना ही विश्वास है, जितना आपको मेरी इस सचाई पर होना चाहिए कि आपकी राजसभा के विलासमय अस्तित्व की विराट व्यर्थता को ढोने के बदले जीवन के कल्याण के लिए मै दर-दर भटकती फिरने वाली धूल मे मिल जाना अधिक श्रेयस्कर समझता हू।

स०—पर धूल मे उडने के लिए सूखने की आवश्यकता होती है आचार्य !

श०—सूखना तो तपस्या है सम्राट् !

श०—ईश्वराज्ञा राजाज्ञा से बड़ी है यह उससे भी महान् सत्य है।

स०—पर ईश्वर राजा की जिह्वा से ही बोलता है।

श०—जो ईश्वर केवल राजा की जिह्वा से बोलता है उसे कलाकार अपना ईश्वर नहीं मानता।

स०—आचार्य ! यह राज-द्रोह है !

श०—यह जो कुछ भी है, मेरा विश्वास है।

स०—लेकिन इस का मूल्य ?

श०—आप जो वसूल कर सकें, वह सब कुछ।

स०—तो . तो...(एकाएक निर्झरिणी उठती है और झपटकर सम्राट के चरणों पर गिर पड़ती है)

नि०—सम्राट ! क्षमा . क्षमा...क्षमा...

स०—(उसे उठाते हुए) नर्तकी ! क्षमा किसे...किस बात की ?

नि०—अपराध बड़ा होता है, पर क्षमा उससे भी बड़ी हो सकती है। जो अपने सत्य के आग्रह का साहस रखता है उसे उसके सत्य की सदोषता के दण्ड के साथ उससे साहस का पुरस्कार भी मिलना चाहिए।

स०—नर्तकी! साहस का पुरस्कार एक बार मिल सकता है पर सत्य की सदोषता का दण्ड बार बार मिलता रहेगा। तुम स्वयं आचार्य से ही पूछो वे क्षमा चाहते हैं ?

नि०—(शशांक की ओर घूमकर) आचार्य, मेरी धृष्टता को क्षमा करेंगे, आत्महत्या कोई वीरता नहीं है।

श०—देवि, क्या किसी भी ऐसे बलिदान की आप कल्पना कर सकती हैं जो आत्महत्या न हो ?

नि०—पर समुचित बलिदान के लिए जीवन में अ... ... कमी नहीं।

(सम्राट संकेत करते हैं सैनिक आचार्य की ओर देखते हैं। गम्भीर भाव से आचार्य शशाक का प्रस्थान)

स०— मैं ने क्या करना चाहा था और यह क्या हो गया?... सोचना होगा .. (प्रस्थान)

(पटाक्षेप)

चतुर्थ दृश्य

(निर्झरिणी का शयन-कक्ष। आपादमस्तक कृष्णवस्त्र पहने निर्झरिणी एक स्वर्ण-दीप सम्मुख रखे कुछ लिख रही है। पीछे से मजरी सवेग प्रवेश करती है, पर निर्झरिणी को लिखने में व्यस्त देख कर सहम जाती है थोडी देर तक उसके पीछे खड़ी रह कर वह खिडकी की ओर बढती है और उसके पल्ले खोल देती है। वायु का एक झोंका आता है और दीपशिखा तिलमिला उठती है। लिखना बन्द कर निर्झरिणी पीछे की ओर देखती है तो मजरी खड़ी है।)

म०—(उसके सम्मुख आकर) यह क्या निर्झरिणी, तू कहीं बाहर जा रही है?

नि०—हाँ।

म०—इतनी रात्रि को?

नि०—क्यों, रात्रि क्या केवल सोने के लिए ही होती है?

म०—मेरा अभिप्राय है कि..

नि०—मुझे अभी तेरा अभिप्राय सुनने से अधिक आवश्यक काम करने हैं, अभी तू जा।

म०—पर सखी, इतना सुने बिना तो मै नहीं जाऊँगी कि आज राजसभा में...

नि०—हुआ क्या? मै रत्न बनी, मुझे मेरा मूल्य मिला और मैं चली आई। अच्छा तू जा।

मं०—पर यह तू बातें किस की कर रही है ?

नि०—जो मेरी आशा के क्षितिज के उस पार था, पर जिसकी पगध्वनि मैं अपनी कल्पना मे निरंतर सुना करती थी।

म०—पर वह है कौन ?

नि०—जिसे मूल्य की लंबी से-लंबी रेखा नहीं बाँध सकती ।

म०—मै पूछती हूँ, वह है क्या ?

नि०—जो कि मैं होना चाहती थी, हो न पाई।

म०—पर उसका नाम क्या है ? (चद्रसेन का प्रवेश)

च०—आचार्य शशाक !

नि०—यह नाम तो उसके शरीर का है सामंत। उसकी आत्मा का नाम है—कलाकार!

च०—'कलाकार' की जितनी अच्छी व्याख्या तुम कर सकती हो, उतनी कर सकना मेरे लिए तो सम्भव नही है नर्तकी निर्झरिणी, पर इतना अनुभव करता हूँ, कि कला के लिए लोक-कल्याण कर सकने का सब से प्रशस्त मार्ग है राज-शक्ति का संरक्षण प्राप्त करना, और वह सरक्षण जब स्वयं किसी के द्वार पर आया हो, तो उसे ठुकराना कला के अस्तित्व पर कुठाराघात करना है !

नि०—सामंत, जिस दृष्टिकोण से तुम कला को देखते हो, क्षमा करना, उस में सब से बड़ा विकार यही है कि वह केवल शरीर को स्पर्श कर पाता है, आत्मा को नहीं, केवल अस्तित्व को पहचान सकता है, जीवन को नहीं। कला की चर्चा करते समय तुम्हारा ध्यान केवल इसी पर है कि अस्तित्व के संघर्ष मे उसका क्या उपयोग हो सकता है, इस पर नहीं कि अस्तित्व के सघर्ष से अवकाश-प्राप्त क्षणों में मुक्त जीवन उस का क्या उपयोग कर सकता है। तुम्हारे लिए कला ओषधि-सेवन है, अमृत-पान नहीं ।

च०—तो तुम क्या कला का लक्ष्य लोक-कल्याण नहीं मानतीं

चं०—तो क्या तुम्हारे कहने का तात्पर्य यह है निर्झरिणी, कि अभी तक सम्राट् के निमन्त्रण को जिस किसी ने भी स्वीकार किया है उसने केवल या तो लोभ के वशवर्ती हो कर नही तो भय के ?

नि०—इस से भी अधिक सामन्त, मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि अभी तक सम्राट को जिस किसी ने सम्राट कहा है उस के हृदय मे लोभ भी रहा है, आँखों मे भय भी।

च०—तुम्हारे साथ भी क्या यही सच है ?

नि०—मेरे साथ भी और तुम्हारे साथ भी। पर यदि इसका कोई अपवाद हो सका है तो वही जो कल सूर्योदय के पूर्व अपने विश्वास का मूल्य अपने प्राणों से चुकाने वाला है...

म०—कौन ? आचार्य शशांक ?

नि०—हाँ, और सामन्त, तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि निर्झरिणी ने प्रतिज्ञा की है कि या तो वह आचार्य के प्राण बचायेगी और नहीं तो उन्ही के पथ पर चलकर अपना भी प्राणोत्सर्ग करेगी।

च०—निर्झरिणी !......

म०—यह तू क्या कह रही है ?

नि०—और यह लो सामन्त, भारत-सम्राट आर्य समुद्रगुप्त की राज-सभा के रत्न-पद से नर्तकी निर्झरिणी का यह त्याग-पत्र। तुम मेरी ओर से सम्राट से निवेदन कर देना कि उन्होंने मुझ पर जो इतनी कृपा की और मेरी कला की प्रशंसा मे सौजन्य-भरे जो थोड़े शब्द कहे, उसके लिए व्यक्तिगत रूप से उन्हे अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हुई भी मै यह स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि इस रत्न-पद के लिए आचार्य शशांक के हृदय में ऐसी कोई भावना न थी, जो इस समय मेरे हृदय मे न हो, और इस पद का त्याग कर अपने विश्वास का ऐसा कोई मूल्य नहीं, जिसे आचार्य से वसूल किया जा सके और मैं न चुका सकूँ।

नि०—और तुम्हारी बधाई ?

च०—नहीं निर्झरिणी मैं फिर कहता हूँ तुम सोचो......समझो...
लौटा लो! (त्यागपत्र लौटाना चाहते हैं ।)

नि०—तुम्हारी आज्ञा मैं नहीं मान सकूँगी, इसका मुझे खेद है
त फिर भी तुम मेरे वंदनीय हो मेरी इस नई जीवन-यात्रा की
न-वेला मे मुझे बधाई न दे सको तो कम से कम आशीर्वाद तो
.. (नतमस्तक होती है)

च०—निर्झरिणी।......(गला भर आता है)

नि०—अच्छा, क्षमा करना, मुझे शीघ्रता है... ..मंजरी, तुझ से
मिलूँगी. ....(उसे चूमती है और फिर सवेग चली जाती है)

म०—निर्झरिणी......निर्झरिणी ।......(प्रस्थान)

(सामत चन्द्रसेन हाथ में त्याग-पत्र लिए खड़े रह जाते हैं। सामने का
ीं-दीप झॅपाता जा रहा है फिर एक लंबी लौ फेंक कर वह बुझ जाता है।
-धीरे सामत का प्रस्थान)

पंचम दृश्य

[पर्वत शिखर पर कारागृह । ऊँचे, नुकीले पर्वतीय वृक्षों के नीचे
या और आलोक गाढालिंगन में बँधे सो रहे हैं। रात्रि की निस्तब्धता
न्य पशुओं के कर्कश चीत्कार और वायु के झोंकों से खड़खड़ा उठने वाले
रे हुए सूखे पत्तों के हिलने से रह-रह कर भग हो जाती है। आकाश में
ाँदनी के साथ बादलों का मूक अभिनय चल रहा है और करागृह के
ीछे होकर बहने वाली पहाड़ी नदी की निर्विराम कल-कल ध्वनि मानो पृष्ठ-
ंगीत प्रदान कर रही है। कारागृह के लौह-द्वार के सामने दो प्रहरी नगी
लवारें लिये घूम रहे हैं। कृष्णवसना निर्झरिणी का प्रवेश ।)

कर लौटने की उसमें जगह ही नहीं। उस पर तो केवल आगे ही बढ़ा जा सकता है।

नि०—पर तुम चाहो तो उस संकीर्ण पथ को भी विस्तृत बना सकते हो। तुम केवल पथिक ही नहीं, पथ-निर्माता भी हो।

श०—मुझ पर इतनी श्रद्धा की वर्षा कर शायद तुम अपनी बुद्धि के साथ अन्याय कर रही हो देवि! पथ का अनुसंधान करना पथ का निर्माण करना नही है।

नि०—पर जिसने आगे बढ़ने के पथ का अनुसधान किया वह क्या पीछे लौटने के पथ का अनुसधान नही कर सकता?

श०—ऐसा अनुसंधान किया हुआ पथ, पथ नहीं रह जायेगा।

नि०—मैं इसे नहीं मानती। जीवन के कल्याण के लिए जीव को जिस दिशा मे भी चलना पडे वही पथ है। और इस समय जीवन का कल्याण तुम्हारे प्राणों की रक्षा चाहता है।

श०—पर मेरे पथ-भ्रष्ट हो स्वप्राण-रक्षा करने से जीवन का कोई कल्याण हो सकता है, यदि मैं इसे न मानूँ तो?

नि०—शशांक तुम अपने जीवन के इतने निकट हो कि उसके मूल्याकन का तुम्हारा मापदण्ड गलत हो यह संभव है, कम से कम इतना तो तुम मानते हो?

श०—मेरा मापदड गलत है, यह असभव नही, पर केवल प्राण-रक्षा के लोभ से मैं उसे गलत मानने लगूँ, यह असंभव है।

नि०—किंतु मै तो तुम्हे लोभ तुम्हारी प्राण-रक्षा का नहीं, जीवन के कल्याण का दिलाने आई हूँ।

श०—तो क्षमा करना, ऐसे जीवन के कल्याण मे मुझे विश्वास नहीं है, जिसका शिलान्यास असत्य पर हुआ हो।

नि०—मृत्यु का सामना करने से भागना असत्य है मैं मानती हूँ, पर इस से भी बड़ा असत्य है जीवन को पीठ दिखाना।

के लिए इस निशीथिनी की निस्तब्धता में तैर कर इसी विजन पर्वत-माला की दुर्लंध्यता को कुचल कर, इस नारी-जीवन की लोक-लज्जा के आवरण को चीरकर मैं तुम्हारे पास आई हूँ । यह सम्भव है कि अपने तर्क से मैं तुम्हे न जान सकूँ पर स्त्री का बल तर्क नहीं हठ है और और तुम्हारे सम्मुख आज मै स्त्री बन कर ही खडी हूँ ।

श०—स्त्री मेरे लिए शक्ति का प्रतीक है देवि । मैं उस से नैतिक सशक्तता की अपेक्षा करता हूँ ।

नि०—नैतिक सशक्तता का नाम लेकर मेरी प्रतिस्पर्द्धा को जगाने की चेष्टा मत करो शशांक ! स्त्री मृत्यु से नहीं डरती ।

श०—पर दूसरे को डरने का आदेश तो देती है ?

नि०—उफ ! तुम कितने निष्ठुर हो ? क्या तुम्हारे तर्कों का तूणीर आत्म-समर्पण करने वालों के हृदय पर बरसने के लिए ही भरा हुआ है ?

श०—देवि ! मै जो कुछ कहता हूँ वह मेरा तर्क नहीं, केवल मेरे सत्य का नम्र निवेदन है।

नि०—तो फिर तुम्हारे सत्य के सम्मुख जीवन के कल्याण के नाम पर, कला की साधना के संरक्षण के नाम पर और 'और एक स्त्री के एक पुरुष से वर-याचना करने के नैसर्गिक अधिकार के नाम पर मैं अपना आँचल फैला कर, आज तुम्हारे प्राणों को भीख माँग रही हूँ। (घुटने टेकती है) शशांक, तुम मुझे अपने सत्य का अंतिम उत्तर सुना दो ।

श०—सत्य का उत्तर सर झुका कर नहीं, सर ऊँचा करके सुनो देवि ! (निर्झरिणी को उठाते हैं)

नि०—कहो ।

श०—अपनी की मर्यादा की रक्षा के लिए,

सग्राम है सम्राट, जिस में राजसत्ता को गर्व है अपने पशुत्व का और कलाकार को अपने देवत्व का।

स०—तो नर्तकी निर्झरिणी, तुम्हारा त्याग-पत्र पाने और तुम्हारी वाणी से राज-द्रोह के ऐसे विस्फोटक अग्नि-कण झरते देखने के बाद क्या मेरा यह अनुमान करना युक्तिसगत न होगा कि आचार्य शशांक ने अपने बाद अधिकारों के इस सग्राम के सेनानायकत्व के लिए तुम्हारा ही वरण किया है?

नि०—उन्होंने वरण नहीं किया है सम्राट, मै ही स्वयवरा बनी हूँ। उन्होंने तो केवल मार्ग-निर्देश किया है, उस पर चलने के लिए मुझे प्रेरणा मेरी आत्मा ने ही दी है।

स०—फिर मेरा यह समझना भी संभवत. उपयुक्त ही होगा कि उस मार्ग पर पाँव रखने के पहले उसकी संभावनाएँ क्या है तुमने इस की भी कल्पना कर ली है।

नि०—मुझे अपनी कल्पनाशक्ति से अधिक बल अपने इस विश्वास का है कि राजसत्ता के हाथों मे उत्पीडन की जितनी शक्ति हो सकती है, उससे अधिक शक्ति रहती है कलाकार के हृदय में उसे सहन कर क्षमा कर देने की।

स०—निर्झरिणी!

नि०—सम्राट!

स०—मैं चाहता हूँ तुम समझो कि तुम क्या कह रही हो।

नि०—और मै चाहती हूँ कि मैं जो कहती हूँ आप उस पर विश्वास करले।

स०—विश्वास निर्झरिणी, तुमने अपने जीवन मे विश्वास करना सीखा है?

नि०—हाँ सम्राट, बहुत कुछ! मुझे विश्वास है कि अभी मर्यो ने से पूर्व राजसत्ता इस पर्व के सर्वोच्च शिखर पर चढ़कर

नहीं, मैत्री के पारस्परिक अभिज्ञान की स्पृहता लेकर उनसे मिलना चाहता हूँ, मैं भूलना चाहता हूँ कि मैं सम्राट हूँ, चाहता हूँ कि वे भूल जायँ कि वे कलाकार हैं। हम दोनों मनुष्य हैं और मनुष्य के रूप में ही हम एक दूसरे का आलिंगन कर सकते हैं। और निर्झरिणी, मेरा अनुरोध है कि मेरी इस भावना को तुम समझो, इस पर विश्वास करो और यदि हो सके तो मुझे इसमें .... अरे !......(आकाश मे प्रत्यूष का पीलापन भीन रहा है। दक्षिणी वायु अँगडाई ले उठी है। दूर पर जागृति का निःश्वास बन एक कोयल कूक रही है और तब इसी समय कारागृह के प्राचीरों मे सहम कर सिमटी हुई निस्तब्धता में से एक अलौकिक संगीत का मधुमय उच्छ्वास उस लौह-द्वार के ऊपर से छलक कर मानों दिशाओ में चारों ओर उमड़ पड़ता है।)

नि०—आचार्य शशांक स्वर-साधना कर रहे हैं......सुन लो...... इन्हें अंतिम बार सुन लो.....

स०—अंतिम बार !.... (संगीत की स्वर लहरी धीरे-धीरे [illegible] की तरह उठती हुई दिशाओं में गूँजती, पर्वत-शिखरों और [illegible] से टकराती, प्रतिध्वनि के रूप में लौट कर फिर मानों [illegible] की [illegible] विनिमज्जित नीरवता में डूब जाती है। सम्राट [illegible] के [illegible] की तरह खडे लौह-द्वार को देखते हुए स्वप्निल, [illegible], [illegible], निर्निमेष खड़े न जाने क्या सोच रहे हैं, इतने में ही लौह-द्वार के पीछे से एक [illegible] होती है, कारागृह का पाषाण हृदय मानों सचेत हो उठता है, न जाने कितने लोहे और पत्थर के टुकडे आपस में टकरा कर एक कर्कश [illegible] से बज उठते हैं, लौह-द्वार धीरे-धीरे खुलता है और उस के अन्धकार में से उषा की मुसकान की तरह गैरिक वस्त्र पहने आचार्य शशांक [illegible] है और उनके पीछे सामंत चन्द्रसेन और दो [illegible]। [illegible] शशांक को देखकर पहले तो हतबुद्धि से रह जाते हैं मानों [illegible] अलौकिक अदृष्टपूर्व आलोक-पुंज है जिसे वे पहचान भी न [illegible], [illegible] की छाया आँखों में लौट आती है और सम्राट [illegible] से [illegible]

स०—आचार्य शशांक !